बिदेसिया (कथा - सार) भिखारी ठाकुर → 1887 - 1971

सूत्रधार के मंच पर आकर मंगलाचरण करने से नाटक का आरम्भ होता है। शिव - पार्वती, गुरु की महिमा, राम - कृष्ण की वंदना तथा श्री हनुमान जी की वंदना मंगलाचरण में की जाती है। फिर 'रामचरित - - मानस' की चौपाई ~~की~~ 'मंगल - भवन अमंगल हारी।...' से मंगलाचरण पूर्ण होता है। मंगलाचरण के पद मौलिक नहीं है अलग - 2 स्थानों से लिए गए है। इसके उपरांत 'बिदेसिया' शैली के अनुसार सूत्रधार बताता है कि आज 'बिदेसी के तमासा होइहन' फिर नाटक के चार प्रमुख पात्रों - बिदेसी, प्यारी सुंदरी, बटोही और रखेलिन का परिचय दिया जाता है। बिदेसिया की कथा को ~~आत्मक~~ आध्यात्मिक अर्थ → आत्मा - परमात्मा से जोड़ते हुए, सूत्रधार लम्बी भूमिका बांधता है और सूत्रधार के प्रस्थान से नाटक की मूल कथा का आरंभ होता है।

गांव के एक युवक का विवाह सांवली - सलोनी सुंदर युवती से होता है। वह युवक एक खेतिहर मजदूर है। जिसे वर्ष के कुछ दिन ही काम मिलता है। शेष समय वह बेरोजगार रहता है। लम्बी बेरोजगारी उसे बेचैन करती है। ~~बिहार क्षेत्र के रहने वाले~~ यह युवक बिहार का रहने वाला है। भोजपुरी भाषी इस क्षेत्र में कल - कारखाने और जमीन के अभाव के कारण यहाँ के लोगों का इतिहास रोजी - रोटी के लिए देश के कोने-~~कोने~~, बल्कि गिरमिटिया मजदूर बनकर विदेश (मॉरीशस, सूरीनाम, फीजी, ~~ब्रिटि~~ ब्रिटेन, गुयना, हालैंड आदि) जाने का भी रहा है। यह युवक भी गांव के पुरुषों को उस समय अंग्रेजों द्वारा विकसित शहर कलकत्ता में धन कमाने जाते देखता है। वहां कुछ समय रहकर वे धन कमाकर घर लौटते थे। इसे देखकर उसके मन में भी धन कमाने की इच्छा जागती है। वह अपनी पत्नी से कलकत्ता जाने का प्रस्ताव रखता है। उसकी पत्नी, पति द्वारा उसे अकेला छोड़कर कर विदेश जाने की बात भयभीत हो जाती है। वह पति के कलकता जाने का विरोध करती है और हर सम्भव प्रयास द्वारा उसे न जाने की सलाह देती है।

(हाशिये पर: विवाह के बाद वह पत्नी का गवना करा कर ले आता है। दोनों में बहुत प्रेम है वह अपनी पत्नी को प्यार से 'सुंदरी' पुकारता है।)

Scanned by CamScanner

पर बिदेसिया नहीं मानता। वह बहाना बनाकर घर से भाग कर कलकत्ता चला जाता है।

कलकत्ता पहुँच कर वह काड़ी मेहनत - मजदूरी कर धन कमाता है। धीरे - धीरे परदेस में रहते - २ अपने घर परिवार को भूलने लगता है। जिसकी आशंका 'सुंदरी' को पहले से ही थी। उसका कलकत्ता में एक अन्य स्त्री से वह संबंध बना बैठता है। वह उसके मोह में पड़ जाता है। दोनों पति - पत्नी की तरह रहने लगते है। भिखारी ठाकुर ने उसके लिए 'रखेलिन', 'रंडी' विशेषण का उपयोग किया है।

इधर गांव में 'सुंदरी' पर विपत्ती का पहाड़ टूट पड़ता है। पति को याद कर वह रोती रहती है। अकेले जीवन के संघर्षों को झेलती है। ~~एक दिन~~ उसके पास पति की कोई सूचना नहीं है कि वह कलकत्ता में किस हाल में है।

एक दिन एक बटोही को कलकत्ता जाता देखकर वह उसके हाथ अपने पति को संदेश भेजने का निवेदन करती है। पहले तो बटोही उसे झिड़कता है कि वह कलकत्ता कमाने जा रहा है, वह मेहनत - मजदूरी करेगा या उसके पति को खोजेगा। पर फिर सुंदरी की दु:खद कथा को सुनकर वह पिघल जाता है और संदेश देने को राजी हो जाता है। तथा उसके पति को वापस लाने का आश्वासन देता है। कलकत्ता पहुंचने पर सुंदरी के बताये विवरण के अनुसार वह उसके पति को खोज निकालता है। उसे दूसरी स्त्री के साथ देखकर, ~~उस~~ बिदेसी को उसकी पतिव्रता पत्नी सुंदरी की याद दिलाता है। बिदेसी को अपने किए पर अफसोस होता है वह गांव लौट जाता है।

बिदेसी की दूसरी पत्नी ~~भी~~ उसे रोकने का प्रयास करती है। बिदेसी के न मानने पर वह भी उसके पीछे - पीछे, अपने दो बच्चों के साथ उसके गांव पहुंच जाती है। कलकत्ता के चोर-डकैत रास्ते में उसका सब सामान छीन लेते है। उसी हालत में वह

अपने दोनों बेटों के साथ घूमते - 2 विदेशी के घर पहुंचती है

इधर 'सुंदरी' को गति का एक मनचला युवक लालच देता है सुंदरी किसी तरह स्वयं को बचाती है इसी समय बुरी अवस्था में विदेशी घर लौट आता है पति को देखकर सुंदरी प्रसन्न होती है विदेशी की दूसरी पत्नी भी वहां पहुंच जाती है वह सुंदरी से निवेदन करती है साथ रहने का। 'सुंदरी' मान जाती है दोनों मिलकर साथ रहने लगती है

Scanned by CamScanner

यह वह समय था इब्राहिम अल्काजी, हबीब तनवीर दिल्ली में, सत्यदेव दुबे मुम्बई, जालान कोलकाता में सक्रिय थे।

(E)

श्यामानंद जालान (मारवाड़ी)

(13 January 1934 – 24 May 2010)

- कलकत्ता निवासी नाटक निर्देशक और अभिनेता।
- कलकत्ता में 1960 से 1980 तक आधुनिक भारतीय रंगमंच के क्षेत्र में काम किया। विशेष रूप से हिंदी रंगमंच कलकत्ता में विकसित किया।
- मोहन राकेश के नाटकों का प्रथम मंचन इन्होंने किया। 'आषाढ़ का एक दिन' का मंचन 1960 में किया।

'आषाढ़ का एक दिन' का रचनाकाल

- इन्होंने हिंदी और बंगाली रंगमंच को नजदीक लाने का काम किया। और बंगला भाषी कलकत्ता में हिंदी नाट्य दर्शकों की बड़ी संख्या निर्मित की।
- इन्होंने बंगाली नाट्य लेखकों के साथ भी काम किया। जैसे

  बादल सरकार – एवम् इन्द्रजीत (1968)

  " – पगला घोड़ा (1971)

  इन्हीं के प्रदर्शनों से बादल सरकार को पूरे देश में पहचान मिली।

→ **अनामिका** – ग्रुप 'अनामिका' ग्रुप से 1955 में जुड़े। और 'अनामिका कला संगम' संस्था के संयोजक 1967 में बने। 1972 में इन्होंने यह संस्था छोड़ दी। और अपना रंगमंच ग्रुप 'Padatik' 'पदातिक' चलाया। जिसका संचालन वे पूरा जीवन करते रहे।

→ 'संगीत नाटक अकादमी' से निर्देशन का अवार्ड 1972 में मिला। और सन् 1999 – 2004 तक इस संस्था के Vice-Chairman रहे।

Scanned by CamScanner

→ श्यामानंद जालान ने अपना कैरियर एक वकील के पेशे से शुरू किया। धीरे-धीरे उनका रुझान अभिनेता और निर्देशन दोनों क्षेत्रों में गया।

अभिनय की शुरुआत

नाटक - नया समाज - 1949

यही नाटक 1951 में 'समस्या' के नाम से तरुण राय ने मंचित किया। निर्देशन के साथ भी अभिनय करते रहे।

निर्देशन की शुरुआत - एक थी राजकुमारी - 1953 (बच्चों का नाटक) - हिंदी

- जगदीशचंद्र माथुर का नाटक - कोणार्क - 1954
- सेठ गोविन्द दास " " - चन्द्रगुप्त - 1955
- मोहन राकेश के नाटक - 'आषाढ़ का एक दिन' का मंच 1960 में कर इसे आधुनिक नाटक के रूप में पहचान दिलवायी। यह नाटक जालान की भी महत्वपूर्ण खोज थी, जिसमें मानव अस्तित्व/ जीवन की जटिलता को दर्शाया गया था)
- 1966 - में 'लहरों के राजहंस' का मंचन
- 1970 - 'आधे अधूरे' - जिसमें जालान और उनकी पत्नी चेतना ने मुख्य भूमिका अदा की)

बंगाली नाट्यकार बादल सरकार के जादुई यथार्थ पर आधारित नाटक - एवम् इंद्रजीत (1968)
- पगला घोड़ा (1971)

का मंचन कर इन नाटकों को राष्ट्रीय पहचान दिलवाई (1971 में)

(मराठी नाटककार) - विजय तेंदुलकर के कठोर यथार्थ पर आधारित नाटकों का मंचन भी किया -

Scanned by CamScanner

Page No - 3

- सखाराम बाइंडर – हिंदी
- खामोश अदालत जारी है – "
- पंछी ऐसे आते हैं – 1917।
- गिद्ध – 1973
- कन्यादान – 1987

→ इन्होंने नाट्य लेखक और निर्देशक के बीच एक नए संबंध की शुरूआत की

(i) वे ~~क~~ नाट्य लेखक के प्रति आदर जाहिर करते हुए, पटकथा का एक भी शब्द बदलते, काटते - छांटते (alter) नहीं थे।

(ii) अपने मंचित नाटकों में उन्होंने एक नया ट्रेंड शुरू किया (इस तरह शुरूआत भारत में पहली बार हुई) – वे अक्सर नाट्य लेखकों को नाटक की रिहर्सल में बुलाते थे। 'लहरों के राजहंस के मंचन' के समय मोहन राकेश ने इनके ग्रुप साथ 3 सप्ताह बिताये। और नाटक के मंचन के अनुभवों के आधार पर नाटक का तीसरा अंक कई बार फिर से लिखा। नाटक के मंचन के दो दिन पहले तक वह इसके पुन: लेखन करते रहे। यहाँ तक कि ~~क~~ 1968 में इस नाटक के प्रकाशन के समय भी इसे पुन: लिखा गया।

इस तरह नाटककार और निर्देशक के बीच महत्वपूर्ण नया संबंध विकसित करने की परंपरा शुरू हुई। इसी तरह 'एवम् इंद्रजीत' के मंचन के समय वे ~~बादल~~ नाटककार बादल सरकार से जुड़े रहे।

अनामिका थियेटर ग्रुप → इन्होंने भारतेंदु की परपोती ~~के~~ प्रतिभा अग्रवाल के साथ मिलकर 'अनामिका थियेटर ग्रुप' की स्थापना 1955 में की। इस संस्था ने हिंदी रंगमंच पुन: प्रचलन ~~के~~ की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। और 1972 तक इससे जुड़े रहे। इस संस्था ने बंगला भाषी कलकत्ता में हिंदी नाटकों के बड़े दर्शक वर्ग को तैयार किया। ~~इ~~ इस संस्था की रंगकर्मी उषा गांगुली के अनुसार, उस समय अन्य कोई निर्देशक भारत

इस संस्था से ही कलकत्ता में गंभीर नाटकों का मंचन शुरू हुआ।

P.T.O

Page No - 4

था तो सिर्फ मुम्बई में सत्यदेव दुबे।

1967 में 'अनामिका कला संगम' (नृत्य संस्था) की भी स्थापना की गई)

1971 में अनामिका छोड़कर 'पदातिक' (Padatik - literally foot-solider) की स्थापना की। जिसमें उनकी पत्नी प्रसिद्ध कथक नृत्यांगना चेतना जालान और प्रसिद्ध अभिनेता कुलभूषण खरबंदा ने भी इन्हें सहयोग दिया) यहाँ इन्हें अत्यंत गंभीर विषयों के मंचन का भी अवसर मिला। जैसे -

विजय तेंदुलकर - गिद्ध
- सखाराम बाइंडर
"
महाश्वेता देवी - हजार चौरासी की माँ

अब भारतीय, आधुनिक विषय और नए - नए प्रयोग का अवसर मिला। नए निर्देशकों को भी आमंत्रित किया गया। जैसे-
पदातिक में नए-नए निर्देशकों को भी आमंत्रित किया गया। जैसे-
- रंजीत कपूर
- सत्यदेव दुबे
- राजेन्द्रनाथ
- Benmevitz
- Rodney Marriot

- अब यह संस्था साल में तीन नाटक (Productions) मंचित करने लगी)

→ इस संस्था द्वारा प्रदर्शित नाटकों में ड्रामेटिक लाइट दी जाती थी, जो पदातिक की विशेष पहचान बन गया। खासतौर पर बादल सरकार की 'एवम् इंद्रजित' के मंचन के समय दी गई महत्वपूर्ण लाइट यादगार रही।

- इन्होंने प्रथम बार सन् 1977 'Performing Art festival - Chhau festival छाऊ उत्सव' की शुरुआत की)

- श्यामानंद जालान का योगदान
→ कलकत्ता में हिंदी रंगमंच का विकास
→ बंगाली नाटक (बादल सरकार - एवम् इंद्रजीत, पगलाघोड़ा,) का हिंदी में मंचन। इस तरह बंगाली और हिंदी रंगमंच के बीच एक पुल बनाया)

Scanned by CamScanner

→ इन्होंने कालिदास का संस्कृत नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तल' 1980 में ओडीसी नृत्य शैली के साथ प्रस्तुत किया। (with lyrical dance movements of odissi)

→ शेक्सपीयर के नाटक 'किंग लियर' का अनुवाद किया
मौलियर के नाटक - 'द स्कूल ऑफ वाइफ्स' (The School of wives) का अनुवाद किया।

• महाश्वेता देवी के क्लासिकल उपन्यास 'हजार चौरासी की माँ' का नाट्य रूपान्तरण किया।

2010 में इनकी मृत्यु हो गई। अपना लगभग दो दशक का जीवन इसी को दिया।

Scanned by CamScanner

इब्राहिम अल्काजी

इब्राहिम अल्काजी – भारतीय रंगमंच निर्देशक और नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा के पूर्व निर्देशक हैं। उन्होंने नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा के साथ कई नाटकों का निर्देशन किया।

(4) प्रसिद्ध प्रस्तुतियाँ

गिरीश कर्नाड – तुगलक
मोहन राकेश – आषाढ़ का एक दिन
धर्मवीर भारती – अंधा युग
कई शेक्सपीयर और ग्रीक नाटकों का मंचन किया

(5) पुरस्कार

1. हबीब तनवीर पुरस्कार (2004)
2. पद्मश्री – 1966, पद्म भूषण – 1991
3. पद्मविभूषण – 2010 (India's highest civillian award)
4. संगीत नाटक अकादमी फैलोशिप

(6) विशेषताएं

→ 1. कड़े अनुशासन प्रिय → (बेटी अमाल अल्लाना ने एक साक्षात्कार में बताया – उनके पिता का नाटक का मंचन देखने नेहरू जी आने वाले थे, पर फिर वे कुछ लेट हो गए। इब्राहिम जी ने समय से नाटक शुरू कर दिया, पर फिर नेहरू जी के आने पर थोड़े विलम्ब हुए और फिर से नाटक मंचित किया।)
– नसीरुद्दीन शाह – Experience – अपना अनुशासनता के ऊपर → नाटक के मंचन से पूर्व उस पर

2. पूरा शोध करते थे।

3. अपने जीवन में 50 से अधिक नाटकों का मंचन किया।

4. अपने नाटकों के लिए रंगपीठ, अग्रमंच और खुले रंगमंच दोनों का प्रयोग किया।

① 'रॉयल अकादमी ऑफ ड्रामेटिक आर्ट'
Royal Academy of Dramatic Art, London (Rada) 1947 से ट्रेनिंग ली।

1962 → रानावि से जुड़ने से पूर्व मुम्बई में अंग्रेजी नाटकों का मंचन किया। (पूना के रहने वाले, [illegible], घर में अरबी, स्कूल + शिक्षा की भाषा अंग्रेजी) यह परिचय से प्रभावित नारक हालांकि अल्काजी ने भारतीय दृष्टि से इन नाटकों का रूपान्तरण किया।)

→ यह धनी साउदी अरेबियन व्यापारी के पुत्र थे, इनकी माता कुवैत की रहने वाली थी। पूना में इनकी शिक्षा अंग्रेजी में हुई, घर में अरबी का माहौल। संत जेवियर कॉलेज में — अंग्रेजी थियेटर कंपनी से जुड़ गए थे। फिर लंदन में Rada से ट्रेनिंग। लंदन में English Drama league or British Broadcasting Corporation - BBC से Career opportunities offered थे फिर भी भारत लौट आये।

② कार्यक्षेत्र

शिष्य

20 वर्ष की आयु भारत आकर — Bombay Progressive Artist's Group से जुड़ गए। कुछ समय बाद 'School of Dramatic Arts' की स्थापना की। फिर NSD के Director बने।

अल्काजी ने हिंदी रंगमंच के क्षेत्र में क्रांति ला दी। उनकी जादुई समझ, दूरदृष्टि तथा तकनीकी अनुशासन के प्रति उनकी सतर्कता इसमें उनकी मददगार रही। उन्होंने रंगमंच के प्रति एक जागृति उत्पन्न की। और भारतीय रंगमंच की आधुनिक शैली को विकसित किया।

उन्होंने फिल्मी और रंगमंच के क्षेत्र में कई अभिनेता शिक्षित किए, जैसे — विजया मेहता, ओमशिवपुरी, अनुपम खेर, राजकपूर, ओम पुरी, नसीरुद्दीन शाह, मनोहर सिंह, Uttara Baokar, ज्योति सुभाष, सुहास जोशी, बी जयश्री, जयादेव और रोहिणी हट्टंगड़ी। शिष्यों की ऐसी फौज खड़ी कि जिन्होंने रंगमंच, TV, Film, Radio, विज्ञापन के विविध क्षेत्रों में प्रतिष्ठा प्राप्त की। व आने वाली पीढ़ियों के गुरु बने।

और निर्देशन के क्षेत्र में — रतन थियम, ब. व कारंत, मोहन महर्षि, बी. एम. शाह, अमाल अल्लाना, राम गोपाल बजाज, एम. के. रैना, बंसी कौल, भानु भारती, प्रसन्ना, रंजीत कपूर, नादिरा जहीर बब्बर, नीलम मानसिंह चौधरी, देवेन्द्र राज अंकुर तथा फिल्म निर्देशक सतीश कौशिक

इसलिए NSD of शिष्य होना यानी ISI Mark, राजेश विवेक, राजबब्बर, रघुवीर यादव, नीना गुप्ता

Scanned by CamScanner

NSD में योगदान

NSD में 'व्यावसायिक नाट्य कंपनी' — राष्ट्रीय रंगमंडल की शुरुआत की।

- 1964 में 'Repertory Company' की स्थापना की। इसका निर्देशन किया जीवित रहे।

(Repertory – A Theater in which a resident company presents works from a specified repertoire, usually in alternation)

repertoire ↓ A list of dramas, operas, Pieces, Parts etc. which a company or a Person has rehearsed and is Prepared to Perform or display.) — रवीन्द्र भवन में छोटे - अंतरंग, 'स्टूडियो थियेटर' और मुक्ताकाशी 'मेघदूत' जैसे प्रेक्षागृह बनवाये।

- अल्काजी ने 'Art Heritage Gallery' की दिल्ली में अपनी पत्नी रोशनी अल्काजी के साथ की। (त्रिवेणी कला संगम) जिसे उन्होंने चालीस वर्षों तक चलाया। इनकी बेटी 'Amal Allana' NSD की निदेशक और 1977 रहीं। बेटा Feisal Alkazi – दिल्ली में थियेटर निदेशक हैं।

(3) — रंगदृष्टि → प्रयोगशील यथार्थवादी → अल्काजी की मानसिक चेतना सार्वभौमिक थी, जिसमें संकीर्णता के लिए जगह नहीं थी। यह मानसिकता उन्हें अपने पारिवारिक परिवेश से मिली।

वे विश्व की सभी रंग-परंपराओं से अवगत थे और उनके उदाहरण भी वहीं से आते थे। — वे बराबर जोर देते हैं कि आधुनिक समय में कला वह स्थल है जहां देश की सीमाएं धुंधली हो जाती हैं और कला की कोई भी प्रगति किसी देश की प्रगति न होकर समूची मानवता की प्रगति है और आधुनिक समय की मांग है कि एक अंतरराष्ट्रीय शैली विकसित हो जो एक ही समय में उतना ही देशी हो जितना अंतरराष्ट्रीय (1981)

→ तैयारी, अनुशासन, सफाई, बारीकी, ब्यौरा इत्यादि इनकी शैली की विशिष्ट पहचान है जो उनकी रंगमंच में कला के प्रति उतनी ही सजग है जितनी भाषा के सामाजिक सरोकार के प्रति। इब्राहिम अल्काजी ऐसे रंगचिंतक नजर आते हैं जो भारतीय रंगमंच की भारतीय पहचान के साथ एक अंतर्राष्ट्रीय उपस्थिति भी चाहते हैं।

→ इन्होंने रंगमंच को देश, काल, भाषा, शैली और वर्गों में बांटने के बजाए केवल अच्छे रंगमंच पर बल दिया।

Scanned by CamScanner

(6) रंगदृष्टि
(7) NSD में योगदान
(8) शिक्षा परंपरा

इब्राहीम अलकाजी

— दस दशकों तक हिंदी रंगमंच के साक्षी

(9) पुरस्कार

(1) पारिवारिक पृष्ठभूमि → अरबी, अंग्रेजी
(2) Royal Academy of Dramatic Art → RADA – 1947
(3) लौटकर मुम्बई में – English Drama Direction < Bombay Progressive Artist group से जुड़े; School of Dramatic Art की स्थापना की
(4) 1962 – NSD Director till – 1977 (15 years)

जब NSD के निदेशक बने, हिंदी रंगमंच — हल्के और सतही मनोरंजन के साधन की जगह, इन्होंने NSD को देश का सर्वोत्कृष्ट नाट्य-प्रशिक्षण संस्थान बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। रंगमंच को सशक्त, जीवंत और गंभीर अभिव्यक्ति माध्यम बनाया। इन्होंने नाटक को जीवन और समाज की गहरी समस्याओं से जोड़ा।

→ अंग्रेजी में विश्व की अनेक कालजयी एवं श्रेष्ठ समकालीन नाट्य-कृतियों के कीर्तिमान प्रदर्शन किए।
→ उन्होंने अनुभव किया कि अपने देश में होने वाले किसी भी गम्भीर और सार्थक नाट्य-कर्म की भाषा हिन्दुस्तानी ही होनी चाहिए, इस दिशा में पहले कदम के रूप में धर्मवीर भारती के काव्य-नाटक 'अंधायुग' का वह प्रदर्शन किया जिसने आधुनिक रंगकर्म की दशा और दिशा ही बदल दी।

नाट्य-प्रस्तुतियाँ – अंधायुग, तुगलक जैसे विराट फलक के बड़े नाटकों के लिए फिरोजशाह कोटला, तालकटोरा और पुराना किला के खण्डहरों को अलकाजी ने भव्य नाट्य-प्रदर्शन स्थलों के रूप में परिकल्पित एवं प्रयोग करके प्रेक्षकों को अभूतपूर्व और अविस्मरणीय नाट्यानुभव प्रदान किया।

– अलकाजी पर अंग्रेजी और पश्चिमी प्रिय होने का आरोप लगाने वाले हिंदी के अंध-भगत प्रायः ये तथ्य भूल जाते हैं कि ये अलकाजी ही थे, जिन्होंने तब तक पाठ्य या रेडियो नाटक माने जाने वाले अंधायुग और आषाढ़ का एक दिन जैसे हिंदी के मौलिक नाटकों के अत्यंत सफल एवं प्रभावशाली प्रदर्शन किए करके आधुनिक हिंदी नाटक और रंगमंच के गौरवशाली नए इतिहास की शुरुआत की थी।

लक्ष्मीनारायण लाल – 'सूर्यमुख' – (स्वयं अभिनय किया)	अमृतराय – चिंदियों की एक झालर
मोहन राकेश – आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, आधे-अधूरे	रघुवीर सहाय – की कविताओं का नाट्य-पाठ
भास – मध्यम व्यायोग	मुद्राराक्षस – मरजीवा, तिलचट्टा
प्रेमचंद – होरी	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना – बकरी
जयशंकर प्रसाद – स्कन्दगुप्त	बलराज पंडित – पाँचवाँ सवार
शान्ता गांधी – जसमा ओडन	सुरेन्द्र वर्मा – सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक, आठवाँ सर्ग
	रमेश्वर प्रेम चौरासी – चारपाई

(5) 1977 में चित्रकला की दुनिया में चले गए। (अलकाजी की याद में ही संचित हुए) 1991 में NSD के निमंत्रण पर (NSD की स्थापना) रंगमंडल की रजत जयंती पर – गिरीश कर्नाड → रक्त-कल्याण, ब्रेख्त, सोफिया – जूलियस सीज़र, लोर्का के 'दिन के अंधेरे' का भव्य मंचन)

1992 में 'लिविंग थियेटर' की स्थापना की और रंगकर्मियों को नाटक के निर्देशन से नाट्य-प्रशिक्षण की संस्था। अलकाजी – चित्रकला, थियेटर – आर्काइव बनाने में व्यस्त अपनी आत्मकथा लिखने में व्यस्त

217 - 220

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की एक अर्द्धशती

2018 60

वर्ष 2008 में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय ने अपने पचास साल पूरे किए। बहुत कम लोगों को मालूम होगा कि इसका पहला नाम एशियन थिएटर इंस्टीट्यूट था जिसकी स्थापना भारतीय नाट्य संघ द्वारा यूनेस्को और संगीत नाटक अकादमी के सहयोग से प्रदर्शनी मैदान (आज का प्रगति मैदान) में की गई थी और तब इसका पाठ्यक्रम मात्र एक साल का था। दिल्ली के सुप्रसिद्ध रंग-निर्देशक राजेन्द्र नाथ और बाल रंगमंच विशेषज्ञ श्रीमती रेखा जैन इसी एक वर्षीय पाठ्यक्रम के छात्र रहे। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के प्राध्यापक संकाय के दो प्राध्यापक देव महापात्र और शान्ता गांधी भी इसी पहले सत्र में छात्र के तौर पर सम्मिलित थे।

1959 में संगीत नाटक अकादेमी ने एशियन थिएटर इंस्टीट्यूट को नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा के साथ मिलाकर 'नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा एंड एशियन थिएटर इंस्टीट्यूट' नाम से निजामुद्दीन में एक किराए के भवन में इसकी शुरुआत की और दो वर्ष के पाठ्यक्रम की रूपरेखा बनाई। कहा जाता है कि इसके पहले निदेशक के रूप में सबसे पहले पश्चिमी बंगाल के चिर-परिचित रंग-निर्देशक शम्भु मित्र को विद्यालय का निदेशक बनने के लिए आमन्त्रित किया गया था लेकिन उन्होंने अस्वीकार कर दिया। इसके बाद मुम्बई से इब्राहिम अलकाज़ी को यही प्रस्ताव भेजा गया जो रॉयल अकेडेमी ऑफ ड्रामाटिक आर्ट, लन्दन से रंगमंच के विधिवत् प्रशिक्षण के बाद अपनी संस्था थिएटर यूनिट के साथ मुम्बई में नियमित रंगकर्म कर रहे थे और आधुनिक भारतीय रंगमंच में एक नई रंगभाषा और पद्धतिं में लगातार प्रयोग कर रहे थे जो बाद में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के विकसित पाठ्यक्रम का भी आधार बनी लेकिन उस वक़्त उन्होंने भी इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। अन्ततः पहले दो वर्ष के लिए बंगाल से ही सत्तू सेन निदेशक होकर आए जो जर्मनी से लाइटिंग डिज़ाइन में विशेष रूप से प्रशिक्षित होकर भारत लौटे थे और इस दिशा में नए-नए प्रयोग कर रहे थे। लेकिन दो साल के बाद अपने ख़राब स्वास्थ्य के कारण सत्तू सेन को भी लौटना पड़ा और निदेशक बनने के लिए पुनः इब्राहिम अलकाज़ी से आग्रह किया गया जिन्होंने इस बार इसे स्वीकार कर लिया।

1962 में इब्राहिम अलकाज़ी ने विद्यालय के निदेशक के रूप में कार्यभार सँभाला तथा 1977 तक वे इस पद पर कार्यरत रहे। इन 15 वर्षों में विद्यालय ने उनके नेतृत्व

Scanned by CamScanner

में नाट्यकला के शिक्षण-प्रशिक्षण की एक ऐसी पद्धति विकसित की जो भले ही काफ़ी दूर तक पश्चिमी सोच के साथ जुड़ी हुई थी लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसने इन 15 वर्षों में रंगकर्मियों की एक बड़ी पीढ़ी तैयार की जिसने रंगमंच को ही पूरी तरह से अपना ओढ़ना और बिछौना बनाया। दूसरी तरफ़ यह भी उतना ही बड़ा सत्य है कि उस वक़्त न तो दूरदर्शन था और न फ़िल्मों का ही वैसा आकर्षण था जो आज दिखाई पड़ता है। लेकिन फिर भी आँकड़ों के तौर पर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के बारे में फैले हुए मिथकों को शुरू में ही तोड़ देना अच्छा रहेगा। आज तक राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से कुल मिलाकर 758 छात्रों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया है जो देश के 28 राज्यों और 24 भाषाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें से मात्र 30-40 प्रतिशत मुम्बई की मायानगरी में अपनी किस्मत आज़माने के लिए पहुँचे और उनमें से बहुत से फ़िल्मी ऊँचाइयाँ हासिल करने में सफल हुए। बाक़ी 60 प्रतिशत के आसपास अपनी-अपनी भाषाओं, बोलियों और क्षेत्रों में स्वतन्त्र रूप से रंगकर्म कर रहे हैं, विश्वविद्यालयों के नाट्यविभागों में पढ़ा रहे हैं, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय में कलाकार, व्यवस्थापक अथवा प्रस्तुतकर्त्ता की हैसियत से नौकरी कर रहे हैं और कुछ लोग रेडियो और दूरदर्शन में अच्छे पदों पर आसीन हैं। अतः यह कहना कि रंगकर्म का कोई भविष्य नहीं है, बिलकुल ग़लत होगा। यह बात निश्चित है कि यदि शुरू में ही हर राज्य में एक-एक व्यावसायिक रंगमंडल की स्थापना भी हो गई होती तो यह समस्या हमेशा के लिए ख़त्म हो गई होती।

1975 में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय संगीत नाटक अकादेमी से अलग शिक्षा मन्त्रालय के अधीन एक स्वायत्त संस्थान के रूप में रजिस्टर्ड हुआ और नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा सोसायटी के नाम से उसकी अपनी एक सलाहकार समिति बनी। आज तक राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के दस निदेशक हुए हैं जिनमें सत्यू सेन से लेकर वर्तमान निदेशक डॉ. अनुराधा कपूर भी शामिल हैं। संयोग की बात है कि इनमें पाँच निर्देशक क्रमशः बी.एम. शाह, कीर्ति जैन, राम गोपाल बजाज, देवेन्द्र राज अंकुर और डॉ. अनुराधा कपूर विद्यालय के ही प्राध्यापक संकाय से सम्बद्ध हैं और बाक़ी पाँच क्रमशः सत्यू सेन, इब्राहिम अलकाज़ी, ब. व. कारन्त, मोहन महर्षि और रतन थियम बाहर से आए थे। हर निदेशक का कार्यकाल किसी-न-किसी नई शुरुआत के लिए जाना जाता है। उदाहरण के लिए सत्यू सेन के दो वर्ष देश में पहली बार विधिवत् प्रशिक्षण पद्धति के पाठ्यक्रम की शुरुआत बने तो अलकाज़ी के 15 साल तीन वर्षीय पाठ्यक्रम, दो प्रेक्षागृहों के निर्माण (जो कि मेघदूत और स्टूडियो थिएटर के नाम से अभी भी रवीन्द्र भवन में स्थित है) के लिए तो जाने जाते ही हैं, इसके साथ ही तीन अलग-अलग शाखाओं में विशेषज्ञता की दृष्टि से भी चर्चित रहे अर्थात् अभिनय, निर्देशन और मंच-कला। ब. व. कारन्त का कार्यकाल विस्तार योजना और बाल रंगमंच की शुरुआत, रंगमंच में किसी एक विषय में विशेषज्ञता के स्थान पर रंगमंच

Scanned by CamScanner

में समन्वित प्रशिक्षण पद्धति के रूप में जाना गया तो बी.एम. शाह के समय में एक वर्षीय फेलोशिप कार्यक्रम को लाया गया जिसके तहत छात्र अपने क्षेत्रों में जाकर शोधकार्य कर सकते हैं। मोहन महर्षि के समय में अभिनय के प्रशिक्षण में सीनवर्क की शुरुआत हुई तो रतन थियम का डेढ़ वर्षीय कार्यकाल एक बहुत बड़े दीक्षांत समारोह के लिए चर्चित हुआ जिसमें पिछले 14 वर्षों के स्नातकों को एक साथ उपाधि-पत्र प्रदान किए गए। कीर्ति जैन ने विद्यालय में एक दूसरे रंगमंडल—थिएटर इन एजुकेशन को जोड़ा जिसमें वयस्कों द्वारा बच्चों के लिए रंगमंच और उसका प्रशिक्षण देने की शुरुआत हुई। राम गोपाल बजाज का कार्यकाल भारत रंग महोत्सव जैसी महत्त्वपूर्ण घटना के लिए जाना जाता है तो देवेन्द्र राज अंकुर ने विद्यालय की प्रकाशन योजना को आगे बढ़ाया, वीकएंड थिएटर की शुरुआत की जिसके तहत बाहर की रंगमंडलियों को भी विद्यालय में मंचन के लिए अवसर मिला और देश भर में होनेवाले नाट्यसमारोहों में नाट्यसंस्थाओं को भेजने की पहल की। यह अच्छी बात है कि डॉ. अनुराधा कपूर के कार्यकाल का पहला वर्ष स्वर्ण जयन्ती समारोह के रूप में याद किया जाएगा जो विद्यालय के 50 भूतपूर्व छात्र-छात्राओं की प्रस्तुतियों को एक साथ देखने का अवसर उपलब्ध कराएगा जिसके बहाने से लगभग सम्पूर्ण भारतीय रंगमंच का एक खुला आकलन किया जा सकता है।

प्रायः राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय को लेकर इधर के वर्षों में बहुत से सवाल उठाए जाते रहे हैं। उनमें सबसे अहम सवाल तो यही है कि अन्ततः रंगकर्म का सचमुच में क्या भविष्य है? इसका जवाव काफ़ी हद तक ऊपर दिया जा चुका है, फिर भी यह जोड़ना ज़रूरी लगता है कि रंगमंच ही क्यों, यही सवाल नृत्य, संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला जैसी दूसरी कलाओं के सन्दर्भ में भी उतना ही ज़रूरी है। दूसरे 50 वर्ष के अस्तित्व के बाद भी राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय का भारतीय रंगमंच में क्या योगदान है? इसे दोहराने की ज़रूरत नहीं है कि इस दिशा में यदि किसी एकमात्र संस्था ने कोई भी असर पैदा किया है तो निश्चित रूप से वह राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय है और इस असर को कई रूपों में देखा जा सकता है। मसलन, दूसरी भाषाओं के अच्छे-से-अच्छे नाटकों को हिन्दी रंगमंच में प्रस्तुत करके एक बड़ा प्लेटफॉर्म प्रदान करना। भारतीय रंगमंच में पहली बार एकदम नई शुरुआत करना जैसे *कहानी का रंगमंच*। अपने देश के रंगकर्म को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दिखाना और विश्व रंगमंच के परिप्रेक्ष्य में उसकी अपनी एक निश्चित छवि और पहचान को स्थापित करना। रंगमंच को पूरी तरह से आजीविका के साथ-साथ प्रस्तुति के स्तर पर एक व्यावसायिक स्वरूप प्रदान करना। पश्चिमी और भारतीय रंगमंच के आपसी मेलजोल के बीच से एक ऐसे रंगमंच का विकास करना जो सभी दर्शकों को अनुभव के स्तर पर एक बहुत ही गहरी और मार्मिक दुनिया में से गुज़रकर उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में निखार लाने की कोशिश करे। इसका पहला चरण इब्राहिम अलकाज़ी, शान्ता गांधी और व. व.

Scanned by CamScanner

कारन्त के काम में देखा जा सकता है जिसे बाद में आनेवाली पीढ़ियों ने आगे बढ़ाया।

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के बारे में एक तथ्य और एक सत्य निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि आज तक यहाँ जितनी भी प्रस्तुतियाँ हुई हैं उनमें भारतीय भाषाओं के नाटकों का पलड़ा कम-से-कम 65 प्रतिशत और पाश्चात्य नाटकों का 35 प्रतिशत के आसपास है और उनमें से भी ज़्यादातर रूपान्तरित होकर ही प्रस्तुत हुए हैं। अतः यह मानना कि यहाँ सिर्फ़ पाश्चात्य नाटकों का ही वर्चस्व रहा है, बिलकुल ग़लत होगा।

Scanned by CamScanner

: २६ :

आधुनिक रंगमंच

यदि सांस्कृतिक एकता आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है तो यह स्वीकार करने में भी संकोच नहीं होना चाहिये कि इस एकता का सबसे बड़ा साधन रंगमंच ही है। यही वह साधन है जिससे भावात्मक एकता की अनुभूति सर्वाधिक मात्रा में सम्भव है। केवल एकता ही नहीं राष्ट्रीनिर्माण की दिशा में भी रंचमञ्च अच्छा योगदान कर सकता है। इससे हमारे समाज की बुराइयाँ निकल सकती हैं; चरित्र निर्माण हो सकता है और अनेकविध योजनाओं के प्रति जनमानस में रुचि उत्पन्न की जा सकती है।

भारतीय समाज सर्वदा कलाप्रवण रहा है। ऋग्वेद में उषा की नर्तकी से तुलना और यजुर्वेद में सूत, शैलूष कारी (विदूषक) इत्यादि का उल्लेख स्पष्ट प्रमाणित करते हैं कि चिर अतीत में भी भारत में नृत्य और नाट्य का किसी न किसी रूप में प्रसार अवश्य था जो निरन्तर विकास की दिशा में अग्रसर होता गया और विदेशी सम्पर्क से अपना परिष्कार करता गया। भारत की यह पुरानी विरासत अब भी अक्षुण्ण रूप में अपना स्थान बनाये हुए है और जनमानस को निरन्तर आन्दोलित करती रहती है।

आज रंगमंचीय कला बहुत कुछ फिल्म जगत् के अत्यधिक प्रचार से दब गई है। अपनी प्रतिष्ठा और पुष्कल धन दोनों के बल पर ये कम्पनियाँ अच्छे कलाकारों को आकर्षित करती रहती हैं और अच्छे से अच्छे संगीतज्ञ, नर्तक और अभिनेता इन कम्पनियों की ओर दौड़े चले जाते हैं। जिन दृश्यों का रंगमंच पर दिखलाया जाना असम्भव प्रतीत होता है, मूवी केमरा के प्रभाव से वे सभी प्रकार के दृश्य किसी चित्र पट पर सरलता से देखे जाते हैं। वन, पर्वत, नदियाँ, झीलें, रेल, हवाई जहाज, समुद्र, जलयान इत्यादि सभी प्रकार की दृश्यावली हम अनायास ही चित्रपट पर देख सकते हैं और उसका आनन्द ले सकते हैं। असम्भव से असम्भव पौराणिक घटनायें बड़ी सरलता से फिल्माई जा सकती हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि इन फिल्मों के माध्यम से विश्व के किसी कोने में रहने वाले उत्तम से उत्तम कलाकार की उच्चकोटि की कला हम अपने आसपास ही परिशीलित कर सकते हैं। इसका एक बहुत बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ है कि हमारी रंगमंचीय कला अत्यधिक मात्रा में प्रतिहत हो गई

Scanned by CamScanner

है और प्रोत्साहन के अभाव में अत्यन्त सिकुड़-सी गई है। जब सर्वोत्तम कलाकार की सर्वोत्तम कृति का बिना किसी परिश्रम के आनन्द लिया जा सकता है तब स्वभावतः परिशीलक की प्रवृत्ति साधनहीन तथा सामान्य कलाकार की ओर क्यों होने लगेगी। इसके अतिरिक्त रंगमंच पर दिखलाये जाने वाले सभी प्रकार के कथानक, लोकनृत्य, लोकनाट्य कैबरे डांस, वालडांस, सरकस के दृश्य इत्यादि सभी कुछ इन फिल्मों में मिल जाता है तब सामाजिक को और क्या चाहिये ?

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो ये चित्रपट भी रंगमंच से व्यतिरिक्त नहीं। यदि छविगृहों में रंगमंच के स्थान पर केवल एक पर्दा होता है तो भी दर्शक दीर्घायें तो बहुत कुछ उससे मिलती-जुलती ही बनती हैं जिसका उपदेश भरत ने दिया है। अन्तर केवल यही होता है कि इनमें लम्बाई-चौड़ाई में फैले रंगमंचों के स्थान पर ऊपर को उठे हुए रंगमंच होते हैं। दूसरी बात यह है कि यदि छविगृहों में रंगमंच नहीं होता तो कहीं तो होता ही है जिसके चित्र हमें छविगृहों में दिखलाई पड़ते हैं। नर्तकियाँ उसी प्रकार आँखें मटकाती हुई नृत्य करती हैं; उसी प्रकार के अनेक आरोपित रूप समाज का अनुरञ्जन करते हैं। दूसरी बात यह भी है कि प्राचीन छाया नाटक से इन फिल्म कम्पनियों द्वारा लिये हुए चित्रों का कुछ न कुछ तो साम्य है ही। अतः इन्हें भी एक प्रकार के रंगमंच के रूप में स्वीकार करना अधिक अयुक्ति-युक्त नहीं होगा। इन छायाचित्रों में अनेक बातें तो भारतीय परम्परा से आई हुई ही प्रतीत होती हैं। फिर भी इन्हें सच्चे रंगमंच की संज्ञा नहीं दी जा सकती। यह दूसरी बात है कि इनसे रंगमंच का प्रयोजन सिद्ध होता है। प्रत्यक्ष अभिनय ही सच्चे अर्थ में रंगमंच की संज्ञा का अधिकारी है जिसकी कुछ न कुछ सत्ता अब तक बनी हुई है। राजा से रंक तक, शहर से देहात तक सभी व्यक्ति किसी न किसी रूप में इस कला का आस्वादन करते हैं। अनेक थियेट्रिकल कम्पनियाँ सत्ता में आईं जिनमें कुछ तो लुप्त हो गईं और कुछ का अस्तित्व अब तक बना हुआ है। भारतीय रंगमंच का संक्षिप्त विश्लेषण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है—

आधुनिक रंगमंच—एक सर्वेक्षण

भारत में आधुनिक रंगमंच का प्रथम उदय बंगाल में हुआ। इसके दो कारण थे। एक तो बंगालियों की प्रवृत्ति ही ऐसी है कि वे नवीन विचारधाराओं को जितनी उत्कटता तथा क्षिप्रता के साथ स्वीकार करते हैं, उतना भारत के किसी प्रदेश में नहीं किया जाता। दूसरी बात यह है कि अंग्रेज लोगों का आधिपत्य सर्वप्रथम बंगाल में ही स्थापित हुआ था। इन लोगों ने समुद्र के निकट हुगली नदी के किनारे कलकत्ता नाम की एक छोटी-सी बस्ती बसा ली थी जो आगे चलकर भारत का सबसे बड़ा तथा एक अत्यन्त समृद्ध नगर बन गया और बहुत समय तक जिसे भारत की राजधानी होने का सौभाग्य प्राप्त रहा। अंग्रेजों ने अपनी आवश्यकता के लिये जहाँ दूसरी चीजें जुटाईं वहाँ आमोद-प्रमोद के लिये क्लब और नाचघर भी स्थापित किये।

Scanned by CamScanner

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सुराजुद्दौला को हटाकर बंगाल का आधिपत्य १७५७ में प्राप्त किया था। किन्तु कलकत्ता नगर पहले ही सत्ता में आ चुका था और वहाँ 'कलकत्ता थियेटर' नाम का एक नाचघर भी स्थापित किया जा चुका था। इसके तत्त्वावधान में अंग्रेजी नाटकों का अभिनय प्रस्तुत किया जाता या। बहुत से विदेशी अभिनेता भारत आकर अभिनय में भाग लेते थे। पहले केवल पुरुष ही अभिनय करते थे किन्तु बाद में अनेक स्त्रियाँ मञ्च पर अवतीर्ण हुईं। अंग्रेजी शैली का यह प्रथम थियेटर था। बाद में इसी प्रकार के थियेटर देश के अन्य भागों में खुले। आज इनकी संख्या बहुत अधिक है जिनमें विदेशी नाटकों के साथ भारतीय भाषाओं के नाटक भी प्रदर्शित किये जाते हैं। शिमला का एमेच्योर ड्रैमेटिक क्लब बहुत पुरानी संस्था है और इसके तत्त्वावधान में अनेक अच्छे विदेशी अभिनेता अपनी कला का प्रदर्शन कर चुके हैं। भारत के बड़े-बड़े शहरों में थियेट्रिकल ग्रुप बने हुए हैं जैसे दिल्ली में लिटिल थियेटर ग्रुप, बम्बई में थियेटर ग्रुप और थियेटर यूनिट आदि।

अंग्रेज लोग भारतीयों से घुलमिल कर रहना पसन्द नहीं करते थे और अपनी संस्कृति को भारतीय संस्कृति से सर्वदा उच्च सिद्ध करने की चेष्टा करते थे। कलकत्ता के थियेटर में सामान्य बंगाली के लिये प्रवेश निषिद्ध था। बंगाल की कलाप्रवण जाति स्वयं अपने मनोरंजन का साधन जुटाने के लिए लालायित थी। वैसे बहुत पहले से गीतिनाट्य की परम्परा चली आ रही थी। किन्तु मुसलमानों के आक्रमण से वह बिखर चुकी थी। अंग्रेजी रंगमंच बंगालियों के लिये अतिरिक्त आकर्षण थे। फलतः बंगाली रंगमंच का विकास हुआ। एक रूसी कलाकार लैवेडफ ने सर्वप्रथम गोकुलदास के सहयोग से अंग्रेजी नाटकों के बंगला रूपान्तर प्रस्तुत किये। जिनमें बंगाली पुरुषों के साथ स्त्रियों ने भी अभिनय में भाग लिया। आगे चलकर बंगाली नवयुवकों के उद्योग से नेशनल थियेटर की स्थापना की गई जिसमें राष्ट्रीयभावना से ओत-प्रोत नाटक दिखलाये जाने लगे। इस थियेटर की स्थापना में गिरीश नामक व्यक्ति का विशेष योग था। कहा जाता है कि गिरीश स्वयं अत्याचारी अंग्रेजों का अभिनय करता था। जो इतना स्वाभाविक होता था कि एक बार उसके अभिनय को देखकर किसी दर्शक ने उसे वास्तविक अत्याचारी अंग्रेज समझकर जूता फेंक कर मारा था और एक बार लखनऊ में यूरोपीय दर्शक मंच पर चढ़कर हाथापाई करने लगे थे। विवश होकर अंग्रेजों को कानून बनाकर डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट को किसी भी नाटक को बन्द करा देने का अधिकार देना पड़ा। गिरीश घोष ने इस प्रकार के प्रतिबन्ध से बचने के लिये पौराणिक और ऐतिहासिक कथाओं का अभिनय इस रूप में प्रारम्भ किया कि दर्शक तो उसकी व्यंजना समझ जाते थे, किन्तु वह कानून की पकड़ में नहीं आता था। बंगला थियेटर की छत्रच्छाया में दुर्गादास बनर्जी, अहीद्र चौधरी, निर्मलेन्दुला-हिरी प्रभृति कुशल अभिनेता सामने आये और नीहार वाला, तारा सुन्दरी, कृष्णा-कामिनी, प्रभावती, कनकावती प्रभृति अभिनेत्रियाँ तैयार हुईं। इस नाट्यकला का अभिवर्धन डी० एल० राय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर प्रभृति अद्वितीय प्रतिभासम्पन्न

Scanned by CamScanner

कियों ने किया। नेशनल थियेटर के अतिरिक्त स्टार थियेटर, मिनर्वा थियेटर, मनमोहन थियेटर, बंगाली थियेटर भी सत्ता में आये। सर्वप्रथम कायम होने वाला 'नेशनल थियेटर' अब तक 'नेशनल थियेटर फार बंगाल' के नाम से अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं। गिरीश घोष से लेकर शिशिर भादुरी तक अनेक निर्देशकों और अभिनेताओं को बंगाल ने जन्म दिया; अनेक प्रतिष्ठित नाटककारों का आशीर्वाद बंगाली रंगमंच को प्राप्त रहा और इन लोगों की स्तुत्य छत्रच्छाया में यह थियेटर खूब समृद्ध हुआ।

आज बंगाली रंगमंच की दशा अच्छी नहीं है। कुछ तो सिनेमा के प्रसार के कारण और कुछ इसकी पुरानी घिसी-पिटी परम्परा ने इसकी लोक प्रियता को आघात पहुंचाया है। अब न तो वैसे कलाकार हैं और न अभिनेता। फिर भी बंगाल में अनेक विशाल रंगमंच बने हुए हैं और अन्य प्रान्तों से बंगाली रंगमंच की स्थिति कुछ अधिक अच्छी है।

हिन्दी रंगमंच

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक कहे जाते हैं। किन्तु इनके साहित्य क्षेत्र में अवतीर्ण होने के पहले से ही रंगमंच हिन्दी जगत् में प्रवेश कर चुका था। लखनऊ का नवाब वाजिद अलीशाह नाट्यकला का उदार आश्रयदाता था। इसके राजघराने में अनेकविध ललित कलाओं को प्रोत्साहन दिया गया था। गायकों और नर्तकों के साथ ही नर्तकियों की मण्डलियाँ भी उसके संश्रय में पनप रही थीं। उसने उस समय के प्रख्यात कलाकारों को अपने महल में स्थान दिया था। रामलीला, कृष्णलीला, रहस इत्यादि के साथ इन्द्रसभा का भी अभिनय उसके यहाँ होता था। वाजिदअलीशाह के रंगमहल के अतिरिक्त व्यावसायिक पारसी कम्पनी भी हिन्दी रंगमंच के क्षेत्र में पदार्पण कर चुकी थीं।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र को पारसी कम्पनियों का स्तर बहुत ही निम्न कोटि का ज्ञात हुआ। जो भारतीय संस्कृति को ठीक रूप में प्रस्तुत नहीं कर सकती थीं। उनमें तड़क-भड़क चमक-दमक तो थी, किन्तु सस्ते मनोरंजन के कारण इनका आकर्षण बहुत कुछ समाप्त हो जाता था। इसके अतिरिक्त इन कम्पनियों के हाथ में पड़ कर भारतीय नाट्य बदनाम भी बहुत हो चुका था। अधिकांश अभिनेता समाज के बदनाम व्यक्ति होते थे, जो अपने दुराचार के लिए बदनाम हो गये थे। यद्यपि नटों, नर्तकों और अभिनेताओं को कभी अच्छी दृष्टि से नहीं देखा गया। भरत ने एक पौराणिक आख्यान का व्यपदेश लेकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि नाट्यकला प्रवृत्त व्यक्ति ऋषियों द्वारा अभिशप्त हैं, इसीलिये समाज उनको आदर नहीं देता। किन्तु भारतेन्दु के समय में यह स्थिति कुछ अधिक भयावह थी। भारतेन्दु को यह सब अच्छा नहीं लगा और उन्होंने इस कला का उद्धार करने के मन्तव्य से स्वयं नाटक लिखे; कलाकारों को प्रशिक्षण दिया और स्वयं ही नाटकों का अभिनय भी किया।

Scanned by CamScanner

भारतेन्दु की नाट्यकला में प्राचीन रंगमंच, लोकनाट्य और पाश्चात्य नाट्यकला तीनों का प्रभाव था। एक ओर इनमें आमुख, नान्दीपाठ, सूत्रधार इत्यादि का समावेश रहता था, दूसरी ओर पद्यात्मक संवाद, रहस इत्यादि का भी समावेश रहता था और परदे चित्र, रंगमंच की सजावट, ये सब बातें भी इनमें पर्याप्त मात्रा में पाई जाती थीं। भारतेन्दु एक ऐसे रंगमंच को जन्म देना चाहते थे, जिसमें कलात्मक प्रौढ़ता के साथ रंगमंच की उदात्तता और भारतीय जनजीवन की आकांक्षाओं का प्रतिफलन भी विद्यमान हो। सबसे पहले इन्होंने अनूदित नाटकों के अभिनय को प्रोत्साहन दिया। फिर मौलिक नाटक भी लिखने लगे जिनमें तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था पर गहरी चोट होती थी। इनका व्यापक प्रभाव हिन्दी-जगत् पर पड़ा और कानपुर, इलाहाबाद, लखनऊ इत्यादि अनेक स्थानों पर इन्हीं के निर्देशन में तथा इन्हीं को आदर्श मान कर साहित्य रचना होने लगी। साहित्य के अतिरिक्त इनका प्रभाव रंगमंच पर भी पड़ा।

इनकी मृत्यु बहुत ही थोड़ी आयु में हो गई थी। फिर भी साहित्य और रंगमंच दोनों क्षेत्रों में इनका कार्य सर्वदा गौरवपूर्ण स्थान का अधिकारी रहेगा। इनकी मृत्यु इनके द्वारा प्रज्ज्वलित चेतना-दीप को बुझा नहीं सकी। इन्हीं के आदर्श पर अनेक नाटकमण्डलियों ने जन्म लिया। रामलीलामण्डली, हिन्दीनाट्य समिति भारतेन्दु नाट्यमण्डली, काशी नागरिक नाट्यमण्डली प्रभृति अनेक नाट्यमण्डलियाँ एक के बाद एक सत्ता में आती रहीं। इनके रंगमंचों पर आगाहस्र काश्मीरी, पं० राधेश्याम कथावाचक, नारायण प्रसाद बेताब प्रभृति नाटककारों की नाट्य-कृतियाँ प्रस्तुत की जाती रहीं। इसी प्रकार कलकत्ता में हिन्दी नाट्य परिवार नामक एक नाट्यमण्डली की स्थापना कर ली गई। इन मण्डलियों के रंगमंचों पर पारसी थियेटर का पर्याप्त प्रभाव था। किन्तु भाषा और काव्यत्व की दृष्टि से ये कृतियाँ साहित्य क्षेत्र में सम्मानित होने की अधिक अधिकारिणी थीं। इनमें रसात्मकता के साथ आदर्श की भी सुरक्षा की गई थी। दृश्यों में अंकों का विभाजन मौन झांकी पर अंक की समाप्ति, रंगनिर्देश आदि कुछ ऐसी विशेषतायें थीं जो पहले भारतीय नाटक में प्रचलित नहीं थीं। इस काल का नाटककार ही इन विशेषताओं को रंगमञ्च पर ले आया।

नवीन प्रवर्तन की दिशा में भारतेन्दु के बाद एक लम्बा व्यवधान युग आया इस काल में हिन्दी कविता का अभ्यास काल था और द्विवेदी जी की छत्रच्छाया में हिन्दी साहित्य पनप रहा था। भाषा परिष्कार पर इस काल में जितना बल दिया गया उतना साहित्य विधाओं के नवीनीकरण पर नहीं। प्रसाद जी का साहित्य क्षेत्र में प्रवेश हिन्दी कविता के लिये ही नहीं, हिन्दी नाटक के लिये भी नवयुग का सन्देश लेकर आया था। प्रसाद जी कवि और नाटककार तो थे, अभिनेता नहीं थे। इनके ऐतिहासिक नाटकों में नाटकीयता की अपेक्षा साहित्यिकता कुछ अधिक है। अलंकार-विधान प्रतीकात्मकता, शब्द और अर्थसौन्दर्य, दार्शनिकता इत्यादि तत्त्वों का इनके

Scanned by CamScanner

नाटकों में पुष्कल प्रवेश है। संवाद कहीं-कहीं बहुत बड़े हो गये हैं, जिनका अभिनय सरल नहीं है। नाटकों में गीतों का प्रयोग रसात्मकता के अनुकूल है। प्रसाद जी के नाटकों पर प्रायः यह आरोप लगाया जाता है कि इनके नाटक रंगमंच के लिये उपयुक्त नहीं हैं। इसके प्रतिकूल यह कहना अधिक तर्कसङ्गत होगा कि आज के रंगमंच ही प्रसाद जी के लिये उपयुक्त नहीं है। इनके नाटकों को पारसी कम्पनियों ने भी खेला है और अव्यावसायिक मन्चों पर तो इनका अनेकशः अभिनय हुआ है। प्रसाद जी की परम्परा में कतिपय अन्य नाटककार भी हुये किन्तु उनको रंगमञ्च पर अधिक महत्व प्राप्त नहीं सका। इसके साथ ही कतिपय नाटककार उर्दू भाषा शैली या हिन्दुस्तानी में भी रचना करते रहे और उनको पारसी थियेटर अपनाता रहा।

प्रसाद जी के समय में ही मार्क्स और फ्राइड के विचार लोगों के सामने आ गये थे। इसी समय के आसपास इब्सन और शॉ के नाटक भी सामने आये थे। इब्सन के पात्र अधिकांश प्रतीकात्मक हैं जो सामाजिक शक्ति के हाथ के खिलौने के रूप में चित्रित किये जाते हैं। इनके अनुसार मानव कुछ नहीं वह सामाजिक शक्ति (Social forces) के हाथ ही कठपुतली है। शॉ ने प्राचीन रूढ़ियों और परम्पराओं की अवहेलना की है और उनकी निर्मम आलोचना इन रूढ़ियों को झकझोर कर रख देती है। इन सबका प्रभाव हिन्दी नाटक पर पड़ना अनिवार्य था। अतः हिन्दी में आदर्शविरोधी यथार्थवादी, व्यंग्यप्रधान नाटक लिखे जाने लगे। इनमें मनोविश्लेषण का अधिक प्रभाव था। इस प्रकार के नाटककारों में उपेन्द्रनाथ अश्क, डॉ० रामकुमार वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीशचन्द्र माथुर प्रभृति मुख्य हैं। इनके नाटकों में यथार्थ की झलक है किन्तु कई नाटककारों में प्राचीन आदर्श भी स्पष्ट रूप में सुरक्षित हैं। हिन्दी के इन परवर्ती नाटककारों में लक्ष्मीनारायण मिश्र, विष्णु प्रभाकर, लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती और उदयशंकर भट्ट का नाम विशेष उल्लेखनीय है। हिन्दी रंगमंच आज अनेक दिशाओं में फैल-फुटक रहा है। केवल हिन्दी प्रदेश में ही नहीं दूसरे प्रदेशों में भी हिन्दी नाटकों को जब तब रंगमंच प्राप्त हो जाता है। किन्तु ये नाटक आव्यवसायिक कम्पनियों द्वारा ही अभिनीति किये जाते हैं। आज के हिन्दी रंगमंच की सबसे बड़ी कमी यही है कि इसे कोई व्यावसायिक रंगमंच प्राप्त नहीं हुआ है। वैसे हिन्दी भारत की राष्ट्र भाषा है और इसमें प्रवीणता प्राप्त करने की आकांक्षा प्रायः सर्वत्र पाई जाती है। अनेक कस्बों और शहरों में अव्यावसायिक नाट्यमण्डलियाँ हिन्दी नाटक को पर्याप्त प्रोत्साहन देती हैं। राजधानी में ही कई नाट्यमण्डलियाँ स्थापित हैं जिनमें कुछ के ये नाम हैं—दिशान्तर, अभियान, यान्त्रिक, नया थियेटर, थ्रीआर्टस क्लब, थियेटर पैनोरमा, फाइव आर्ट्स थियेटर आदि। भारत सरकार भी इस कला को पर्याप्त प्रोत्साहन देती है। इसके लिए संगीत नाटक अकादमी महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। नगर में कई एक धार्मिक कमेटियाँ भी कायम हैं जिनमें रामलीला कमेटियाँ प्रमुख हैं। इस प्रकार हिन्दी रंगमंच को प्रोत्साहन तो कई दिशाओं से मिल रहा है; किन्तु सिनेमा के अत्यधिक प्रचार ने इसके मूल पर कुठाराघात किया है इसमें सन्देह नहीं।

Scanned by CamScanner

बम्बई महाराष्ट्र और गुजरात का रंगमंच

जब सिनेमा का इतना अधिक प्रसार नहीं हुआ था अनेक नाट्य-मण्डलियाँ लाखों रुपये लगाकर नाट्य की आयोजना करती थीं और उनको इस कला से लाखों रुपये की आमदनी होती थी। इस प्रकार की नाट्य-मण्डलियों में पारसी ढंग के थियेटर प्रमुख थे। अब भी इस प्रकार के (व्यावसायिक) थियेटर यत्र तत्र पाये जाते हैं जो अपनी पुरानी परम्परा को बनाए हुए हैं। किन्तु इनका यौवनकाल अब से लगभग ४०-५० वर्ष पहले तक रहा जो धीरे-धीरे अपनी चमक-दमक खोता गया। पारसी थियेटर चलते-फिरते थियेटर थे जिनकी सारी सामग्री साथ ही रहती थी। स्त्रीपात्रों का अभिनय करने के लिए पतित स्त्रियाँ और वेश्यायें रहती थीं। उस समय तक रंगमंच पर आने वाली लड़कियों को अच्छी निगाह से नहीं देखा जाता था। नाटक में परदों की विशेषता होती थी और अनेक दृश्य परदों से ही बना लिए जाते थे। नई-नई झांकियाँ प्रस्तुत करना और रंगमंच के लिए जो घटनाएँ असम्भव समझी जाती थीं उनका रंगमंच पर प्रदर्शन करना इन कम्पनियों की बहुत बड़ी विशेषता थी। नाटक बहुत साधारण कोटि के किन्तु उपदेशपरक होते थे और सामयिक प्रभाव चित्रित करने वाले नाटकों का भी अभिनय इनमें अत्यधिक मात्रा में किया जाता था। ये कम्पनियाँ एक दूसरे से होड़ लेकर चलती थीं और अधिक से अधिक दर्शकों को अपनी ओर खींचने के लिए एक ओर ये लोकरुचि का अनुवर्तन करती थी और दूसरी ओर समाजसुधार का भी इन्हें ध्यान रहता था। इनमें एल्फ्रेड कम्पनी सर्वाधिक प्रसिद्ध थी। मुझे याद है कि एक बार यह कम्पनी सन् १९३३-३४ के आसपास फर्रुखाबाद में आई थी। उस समय मैं वहाँ छात्र था। इस कम्पनी की इतनी शोहरत हुई कि तत्कालीन सिनेमा घर भी ठप्प हो गये। शहर में कानून और व्यवस्था की समस्या उत्पन्न हो गई। वह समय अत्यधिक गरीबी का था। टिकट के पैसों के लिए चोरियों की संख्या बहुत बढ़ गई थी। यह कम्पनी दो महीने के परमिट पर फर्रुखाबाद आई थी; किन्तु एक ओर सिनेमा घरों के मालिकों ने इनके हटाने के लिए प्रयत्न किया और दूसरी ओर अधिकारियों को भी कानून और व्यवस्था की दृष्टि से इसका अधिक समय तक फर्रुखाबाद में रहना उचित प्रतीत नहीं हुआ। फलतः इन्हें अपना कार्यकाल बिना ही समाप्त किये लगभग १५ दिन में ही शहर छोड़कर चले जाना पड़ा। आजकल की सिनेमा अभिनेत्रियों की भाँति ही इस कम्पनी की कई नायिकायें बहुत प्रसिद्ध हो गई थीं। कई नाट्य लेखक और अभिनेता तथा निर्देशक अत्यन्त प्रसिद्ध हो गये थे। किन्तु अब इस कम्पनी का नाम भी बहुत कम लोगों को ज्ञात है। यह सर्वथा अतीत की वस्तु बन गई है।

वस्तुतः ८वीं-९वीं शताब्दी में ही कुछ तो धर्मान्ध मुसलमानों से उत्पीड़ित और कुछ व्यापार-प्रसार की कामना से पारसी लोगों ने भारत में प्रवेश किया औरएक ओर भारत के अनेक व्यवसायों को आत्मसात् कर लिया तथा दूसरी ओर आमोद-प्रमोद की दिशा में भी भारत का नेतृत्व बहुत समय तक अपने हाथ में रक्खा इन लोगों की एक विशे-

Scanned by CamScanner

षता यह थी कि समय-समय पर मनोरंजन की दिशा में जो नये-नये प्रवर्तन होते जाते थे उनका अनुसरण करने में ये कुशल थे और उनकी विशेषताओं को आत्मसात् भी कर लेते थे। जब अंग्रेजों के साथ समुद्रपार की एक नई सभ्यता का भारत में पदार्पण हुआ तब उनके साथ थियेटर के नये रूप ने भी प्रवेश किया और उनके अनुकरण पर पारसी थियेट्रीकल कम्पनी की भी परम्परा चल दी। इनका केन्द्र बम्बई था क्योंकि वहीं पारसी लोगों की अधिकांश आबादी थी। पोस्ता जी फ्राम जी की थियेट्रिकल कम्पनी पहली थी जिसकी स्थापना १८७० में हुई थी। इसके कुछ समय बाद खुर्शेद जी की 'विक्टोरिया थियेट्रिकल कम्पनी' सत्ता में आई। ऊपर न्यू एल्फ्रेड कम्पनी का उल्लेख किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त ओल्ड पारसी थियेट्रिकल कम्पनी, अलेग्जेण्ड्रा कम्पनी प्रिंस थियेट्रिकल कम्पनी, कोरेंथियन कम्पनी, इम्पीरियल थियेट्रिकल कम्पनी आदि प्रमुख हैं। पारसी लोगों ने विलायत तक अपनी कला प्रदर्शित करने की चेष्टा की। यद्यपि इनके नामों में अंग्रेजीपन झलकता है किन्तु इन कम्पनियों ने भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखने की दिशा में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। इनके परदों पर पौराणिक संस्कृति के भव्य दृश्य अंकित रहते थे। पात्रों के प्रवेश और निर्गम, वेशभूषा और सजावट, दृश्य-योजना, कथावस्तु और संवाद सभी में भारतीयता की पूरी सुरक्षा की गई थी। इनकी कथावस्तु का उपादान पुराणों से भी किया जाता था, मध्यकाल की ऐतिहासिक घटनाएँ भी इनका विषय बनती थीं और सामान्य सामाजिक कथानक भी पुष्कल रूप में रंगमंच पर लाये जाते थे। चरित्र निर्माण की दिशा में भी ये कम्पनियाँ पर्याप्त सचेष्ट थीं। सत्य, त्याग, अहिंसा, वीरता, पातिव्रत धर्म इत्यादि अपेक्षणीय गुणों की छाप छोड़ना इन कथानकों का प्रमुख उद्देश्य प्रकट होता था। हिन्दू-मुस्लिम एकता की दिशा में भी इन कम्पनियों ने थोड़ा बहुत प्रयत्न किया था। सामाजिक विषय को रोमैण्टिक शैली पर प्रदर्शित करना इनकी विशेषता थी।

पारसी कम्पनियों की कला कुछ तो भारतीय परम्परित रंगमंच पर आधारित थी; कुछ पाश्चात्य सम्पर्कजन्य प्रभाव को लिये थी और भारतीय लोकनाट्य का भी इन पर कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा था। अभिनय का प्रारम्भ सामूहिक गीत से होता था जिसे सुविधापूर्वक नान्दी पाठ की संज्ञा से विभूषित किया जा सकता है। अभिनयारम्भ की सूचना बन्दूक की फायर से दी जाती थी और दृश्य परिवर्तन के अवसर पर भी फायर करने की परम्परा थी। अभिनय की सफलता असम्भव दृश्यों के प्रदर्शन में मानी जाती थी और जो कम्पनी इस प्रकार के दृश्य जितनी अधिक मात्रा में दिखला सकती थी, वह कम्पनी उतनी ही अधिक सफल मानी जाती थी। हनूमान का पर्वत लेकर हवा में उड़ना, रासलीला में कृष्ण का अनेक रूप धारण कर लेना, प्रह्लाद का आग की लपटों में न जलना, खम्भा फाड़कर नरसिंह का प्रकट होना, नदी की धारा, पर्वत जंगल, रेलगाड़ी का दौड़ना, किसी देवता का तत्काल प्रकट हो जाना इत्यादि दृश्य बड़ी सरलता और बड़ी स्वाभाविकता से रंगमंच पर दिखला दिये जाते

Scanned by CamScanner

थे। पात्रों की वेशभूषा में तड़क-भड़क और चमक-दमक बहुत रहती थी। इस प्रकार एक-एक नाटक खेलने में लाखों रुपये खर्च हो जाते थे। आमदनी के लिए इन कम्पनियों में होड़ लगी रहती थी। अतः प्रत्येक कम्पनी अच्छे से अच्छे दृश्य उपस्थित करने की चेष्टा करती थी और यदि इसके लिए उन्हें अधिक धन व्यय करना पड़ता तो भी ये परवाह नहीं करती थीं। पहले-पहल लड़के ही स्त्रियों का अभिनय करते थे, बाद में स्त्रियों का भी इन रंगमंचों पर आना प्रारम्भ हो गया।

प्रत्येक नाटक में एक हास्य अभिनेता अनिवार्य रूप से होता था जिसका लक्ष्य प्राचीन भारतीय नाटकों की भाँति केवल पेटू ब्राह्मण नहीं होता था अपितु मोटा लाला, मुँहचढ़ी पत्नी, पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुयायी इत्यादि कोई भी हो सकता था। इन कम्पनियों के पात्र रंगमंच पर प्रेमप्रदर्शन के उत्तानशृंगारपरक दृश्य दिखलाने में भी संकोच नहीं करते थे।

अब ये कम्पनियाँ केवल इतिहास की वस्तु रह गई हैं। सिनेमा के व्यापक प्रसार से इनकी सत्ता ही समाप्त हो गई। जन-प्रोत्साहन के अभाव में इतनी अधिक व्ययसाध्य कम्पनियाँ निस्सन्देह चल ही नहीं सकती थीं। फिर भी इनका व्यापक प्रभाव केवल महाराष्ट्र के रंगमंच पर नहीं प्रत्येक प्रान्त के रंगमंच पर देखा जा सकता है। बम्बई में आज भी रंगायन इत्यादि कतिपय थियेट्रिकल कम्पनियाँ कायम हैं और प्राचीन उच्चता को किसी न किसी रूप में बनाये हुए हैं।

पुराने रंगमंचों में 'पीपुल्स थियेटर' भी उल्लेख्य है। इसमें एक ओर प्राचीन भारतीय रंगमंचगत विशेषतायें सम्मिलित की गईं और दूसरी ओर भारतीय लोकनाट्य की विशेषतायें भी उसमें अवतरित की गईं। सूत्रधार और विदूषक इत्यादि पुराने रंगमंच के अवशेष थे और नृत्त, गीत इत्यादि पर लोक नाटक का बहुत अधिक प्रभाव था। रंगमंच की रचना में भी लोक नाटक की छाया दृष्टिगत होती थी। खुले मैदान में इनके रंगमंच बड़ी सरलता से बना लिये जाते जिसमें मंच सज्जा पर भी विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। भावना को आश्रय बनाकर ये नाटक प्रवृत्त होते थे और लोगों की भावना को उभाड़ना खूब जानते थे। उनके माध्यम से दर्शकों और अभिनेताओं का एकीकरण सा हो गया। अभिनेता प्रायः दर्शकों में ही बैठे रहते और अभिनय समाप्त कर वहीं आकर बैठ जाते।

इस थियेटर की बहुत बड़ी विशेषता थी कि इनके कथानक में सामयिकता के प्रभाव की अत्यधिक परिस्फूर्ति थी। पूँजीवादी-सामन्तवादी मनोवृत्ति और प्रवृत्ति के प्रतिकूल जन आन्दोलन की छाया इनमें दृष्टिगत होती थी। इसके माध्यम से भारत में अंग्रेजी राज्य के प्रतिकूल आन्दोलन को प्रोत्साहन देने की चेष्टा की गई। बंगाल की भुखमरी के विषय में जनमत जागृत किया गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में जो हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए उसमें भी ये कलाकार निर्लिप्त भाव से साम्प्रदायिक सद्भाव उत्पन्न करने की चेष्टा करते रहे और इनका प्रभाव भी बहुत ही व्यापक रूप में पड़ा। महा-

Scanned by CamScanner

युद्ध के दिनों में इन कलाकारों ने सामन्तवादियों के प्रतिकूल जनमत जागृत किया। इसके अतिरिक्त ये कलाकार स्वतन्त्रता के युग में भी अनेक नवीन समस्याओं पर प्रकाश डालते रहे। किसान मजदूर आन्दोलन, वर्गसंघर्ष इत्यादि की दिशा में भी इस थियेटर का कार्य महत्त्वपूर्ण था। सामान्य रूप में कम्यूनिस्ट आन्दोलन को इससे बहुत अधिक बल मिला। इसके अतिरिक्त प्रान्तीय भाषाओं के अनेक नाटकों के अभिनय को भी इससे पर्याप्त बल मिला। नृत्यनाट्य का प्रोत्साहन भी इसकी अनन्य विशेषता थी। इसके प्रतिष्ठित कलाकारों ने नई-नई कम्पनियाँ कायम कर लीं और इससे अलग हो गये। अनेक उच्चकोटि के प्रतिष्ठित अभिनेता इस थियेटर के आभारी हैं। लगभग १९६० तक इस थियेटर का पर्याप्त प्रसार रहा; किन्तु अब यह अपने वृद्ध कलेवर को जैसे तैसे धारण किये हैं।

पृथ्वी थियेटर

पृथ्वीराज कपूर का नाम फिल्म जगत् में अत्यन्त प्रसिद्ध है। राज्य परिषद में साहित्य और कला के प्रतिनिधि के रूप में आपकी नियुक्ति आपकी उच्चतर तथा उदात्त अभिनयकला प्रवीणता की परिचायक है। आपके बोलने के ढंग और अभिनय की स्वाभाविकता ने बहुत से लोगों को आपकी ओर आकृष्ट किया और परिवार के अनेक सदस्य फिल्म जगत् में सफलता के लिये आपके कुशल निर्देश न के ही आभारी हैं। कपूर वंश की राजकपूर के बाद तीसरी पीढ़ी भी ऋषिकपूर के और रणधीरकपूर रूपमें फिल्म जगत् में पूरी सफलता के साथ अग्रसर हो चुकी है किन्तु यह पूरा खानदान पृथ्वी थियेटर का कृतज्ञ है और अभिनय कला का प्रथम प्रशिक्षण प्रायः प्रत्येक सदस्य को पृथ्वीराजकपूर के निर्देशन में इस थियेट्रिकल कम्पनी के तत्त्वावधान में ही प्राप्त हुआ है। ये दरबार महल, तपोवन, उद्यान, कंकरीले पथरीले मार्ग इत्यादि दिखलाने में सिद्धहस्त हैं। तीज-त्यौहार, पर्व-उत्सव, विवाह-शादी इत्यादि की झाँकियाँ भी इनके रंगमंच पर विशेष रूप से दिखलाई जाती थीं। इनकी अभिनयवस्तु का क्षेत्र अनेकविध होता था, किन्तु उसमें देशभक्ति और देश की आधुनिक समस्याओं की विशेषता सर्वत्र विद्यमान रहती थी। इनके स्टेज पर पौराणिक कथानक तथा संस्कृत नाटकों के रूपान्तर भी अभिनीत हो चुके हैं। किन्तु पृथ्वीराजकपूर को अपने थियेटर के लिये उचित सहयोग नहीं मिला। इन्होंने अपने घरवालों को मिलाकर ही रंगमंच की योजना बनाई थी। किन्तु इनके परिवार के सदस्य थियेटर में सम्मिलित होते थे, वहीं से शिक्षा लेते थे और अवसर पाकर फिल्म जगत् की ओर बढ़ जाते थे। अतः विवश होकर इन्हें १९६० के आसपास अपना थियेटर बन्द कर देना पड़ा।

प्रान्तीय थियेटर

रंगमञ्च की दृष्टि से बम्बई का विशिष्ट स्थान है। अनेक फिल्म कम्पनियाँ यहीं प्रतिष्ठित हैं और फिल्म जगत् के अनेक प्रसिद्ध कलाकार यहीं की सम्पत्ति हैं। अतीत में बम्बई का रंगमञ्च भी उसी प्रकार प्रसिद्ध रहा है। आधुनिक मराठी

Scanned by CamScanner

रंगमञ्च की स्थापना सन् १८४३ ई० में साँगली के राजघराने में संगीतज्ञ श्री विष्णुदास भावे द्वारा आन्ध्र प्रदेश के रंगमञ्च के अनुकरण पर की गई थी । यह पहले-पहल संगीत नाटक था । इसमें संगीतमय संवाद रटे रहते थे । किन्तु अभिनेता तत्काल गद्य संवाद बना लिया करते थे । भावे की नाटक-मण्डली ने कई महत्वपूर्ण नाटक प्रस्तुत किये इन नाटकों में धार्मिकता और पौराणिकता की प्रधानता थी । कहा जाता है इन नाटकों में असुरों के बड़े भयानक दृश्य दिखलाये थे जाते और इस काम के लिये मुखौटों का प्रयोग किया जाता था । आगे चलकर जब भारत में राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ, इन नाटकों ने जन-जागृति उत्पन्न करने और विदेशी सत्ता के प्रतिकूल जनमत जगाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया । यद्यपि इनका विषय अधिकतर धार्मिक-पौराणिक ही होता था किन्तु अभिनय इस प्रकार किया जाता था कि भारत की वर्तमान दशा पर अनायास ही प्रकाश पड़ जाता था । इस रंगमञ्च पर मराठी के अतिरिक्त कतिपय हिन्दी नाटकों को भी अभिनीत किया गया । मराठी नाटकों के लिये महाराष्ट्र मंडली, आर्योद्धारक मण्डली इत्यादि कई अन्य मण्डलियाँ भी कायम की गईं, जिन पर शेक्सपियर के नाटकों का भी सफलतापूर्वक अभिनय प्रस्तुत किया गया । मराठी रंगमंच में किर्लोस्कर कम्पनी का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है जिसकी स्थापना अन्ना साहब किर्लोस्कर ने की थी और उस रंगमंच को मामा बरेरकर जैसे सफल नाट्यकारों का सहयोग प्राप्त हुआ । महाराष्ट्र में रंगमंच का उपयोग स्वराज्य के आन्दोलन को तीव्रतर करने की दिशा में बहुत अधिक किया गया । इसके द्वारा स्वतन्त्रता की ज्योति तो महाराष्ट्र में फैलाई ही गई इससे उपार्जित द्रव्य भी पुष्कल मात्रा में स्वराज्य फण्ड में दिया गया । इसके कई अभिनयों पर तत्कालीन ब्रिटिश शासन ने प्रतिबन्ध लगा दिया था जिसमें खाडिलकर लिखित 'कीचक बध' प्रधान है । कहा जाता है कि इसमें भीमसेन के रूप में महात्मा तिलक और कीचक के रूप में लार्ड कर्जन प्रस्तुत किया गया था । इन नाटकों पर प्रतिबन्ध १९३७ में प्रान्तीय स्वराज्य स्थापित हो जाने पर उठे थे ।

महाराष्ट्र रंगमंच की गिरती हुई दशा का पुनरुद्धार 'मुंबई-मराठी साहित्य संघ' ने किया । इसने मराठी नाटकों के समारोह का आयोजन किया जो अब तक प्रतिवर्ष होता है । इसके तत्त्वावधान में एक ओपेन थियेटर बनाया गया है जिस पर अनेक मण्डलियाँ आकर सहस्रों दर्शकों के सामने अपनी कला प्रदर्शित करती हैं किन्तु यह रंगमंच की परम्परा अपना बहुत कुछ वैभव खो चुकी है । बड़े-बड़े थियेटर हाल सिनेमा घरों का काम देने लगे । जहाँ पहले दसियों मण्डलियाँ कायम थीं अब केवल चार-छः शेष रह गई हैं । आज की महाराष्ट्रीय नाटक मण्डलियों में मोतीराम गजानन रंगणेकर का नाट्य निकेतन अधिक प्रसिद्ध है । महाराष्ट्र सरकार का सहयोग और प्रोत्साहन भी तत्रत्य रंगमंच को प्राप्त है । किन्तु सिनेमा जगत् के व्यापक प्रसार के सामने इसका प्राचीन गौरव प्राप्त कर लेना कुछ असम्भव-सा लगता है यद्यपि

Scanned by CamScanner

इस दिशा में प्रतिष्ठित तथा योग्य कलाकारों का सहयोग प्राप्त है ; फिर भी इसके उत्थान की अधिक आशा नहीं की जा सकती ।

पारसी कम्पनियों का उल्लेख किया जा चुका है । पारसी लोग मराठों की अपेक्षा गुजरातियों के अधिक निकट थे । इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि ये लोग कठोर प्रकृति वाले मराठों की अपेक्षा गुजरातियों की कोमलतर प्रकृति से अधिक मिलते थे । प्रारम्भ में गुजराती रंगमंच का उदय इन पारसी कम्पनियों के माध्यम से ही हुआ । किन्तु धीरे-धीरे यह अनुभव किया जाने लगा कि ये कम्पनियाँ विदेशी प्रवृत्ति को अधिक लिये हैं । अतः पारसी रंगमंच के स्वतन्त्र विकास करने की आवश्यकता अचिरात् अनुभव की जाने लगी । धीरे-धीरे कई नाटक कम्पनियाँ स्वतंत्र रूप से सत्ता में आ गईं । इन नाटक कम्पनियों में भी असम्भव लगने वाली घटनाओं को रंगमंच पर प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति विशेष थी । कालिया नाग के फन यमुना की धार से उठते हुए दिखलाई देते थे जिन पर भगवान् कृष्ण नृत्य करते हुए दिखलाये जाते थे । आकाश में परियाँ उड़ती चली जाती थीं । इन कम्पनियों ने भी पहले पहल अंग्रेजी या संस्कृत के नाटकों के अनुवाद ही प्रस्तुत किये किन्तु बाद में मौलिक नाटकों की रचना की जाने लगी । इन मौलिक नाटकों के विषय भी अधिकांश पौराणिक होते थे । आगे चलकर अनेक व्यवसायी कम्पनियों की स्थापना हो गई जिनमें विद्याविनोद नाटक समाज, सरस्वती नाटक समाज, आर्य नाट्य समाज आदि प्रमुख हैं ।

गुजराती नाटक समाज ने उच्चकोटि के कई नाटककार प्रदान किये हैं जिनमें कन्हैयालाल मांणिकलाल मुन्शी, रमणलाल देसाई, श्री चन्द्रवदन मेहता प्रभृति प्रमुख हैं । इनके नाटक केवल गुजराती रंगमंच के ही नहीं, अन्य प्रान्तीय भाषाओं की नाट्यकला के भी दिशा-निर्देशक रहे है । विशेष रूप से मुन्शी के नाटक दूर दूर तक रंगमंच प्राप्त कर सके और पर्याप्त रूप में समादृत हुए । गुजराती रंगमंच का भविष्य भी बहुत उज्ज्वल नहीं कहा जा सकता । यद्यपि सुधार की दिशा में प्रयत्न हो रहे हैं और थोड़ा बहुत राज्याश्रय भी प्राप्त है फिर भी अधिकांश नाटक कम्पनियाँ सस्ती ख्याति की ओर दौड़ रही हैं और हलके-फुलके अभिनय और अश्लील प्रहसनों के माध्यम से जनता को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न कर रही हैं । इन रंगमंचों की संख्या पर्याप्त रूप में कम हो गई है ।

दाक्षिणात्य रंगमञ्च

दक्षिण भारत में आधुनिक पाश्चात्यशैली-प्रभावित रंगमंच का प्रवेश उत्तर की अपेक्षा कुछ बाद में हुआ । यद्यपि पहले भी दक्षिण भारत में प्राचीन शैली के धार्मिक तथा लौकिक अभिनय प्रचलित थे किन्तु उनके प्रति जनसाधारण में भावना कुछ अच्छी नहीं थी । सम्भ्रान्त परिवार के व्यक्ति अपने बच्चों को इन अभिनयों के देखने की भी आज्ञा नहीं देते थे । न इनमें वेश रचना ही ठीक होती थी और न

Scanned by CamScanner

अभिनय ही आकर्षक था। इसका यह अर्थ नहीं कि दक्षिण के लोग कलाप्रेमी नहीं होते। मन्दिरों की बहुलता और विशालता, कुचिपुडी, यक्षगान और कथाकली जैसे उच्चकोटि के नृत्यनाट्य, भरत नाट्य का अत्यधिक प्रचार और कर्णाटक संगीत इस बात के प्रमाण हैं कि दक्षिण के लोग रंगीली प्रकृति के होते हैं और उनमें कला के प्रति पर्याप्त मोह विद्यमान है। किन्तु उदात्त नाट्यकला और रंगमंच की दक्षिण में प्रायः कमी ही रही है और परिष्कार तो उनमें हुआ ही नहीं।

दक्षिण की भाषाओं में तमिल सर्वप्राचीन भी है और उसका साहित्य भी पर्याप्त समृद्ध है। नई शैली के रंगमंच का तमिल प्रदेश में प्रवेश इस शताब्दी के प्रथम दशक में हुआ। इसके लिये कई एक रंगमंचीय संस्थायें स्थापित हुईं जिनमें सरस विनोदिनी सभा, सगुण विलास सभा, म्यूजियम थियेटर, कन्हैयालाल एण्ड कम्पनी तथा बालविनोद नाटक सभा आदि प्रमुख हैं। किन्तु प्रारम्भ में तमिल के रंगमंच में स्वाभाविकता की कमी थी। अनावश्यक रूप में भड़कीले कपड़े, नाच का आवश्यकता से अधिक प्रयोग और लम्बे-चौड़े संवाद स्वाभाविकता के प्रतिरोधी थे। बाद में सगुण विलास सभा ने इन्हें स्वाभाविकता प्रदान करने का प्रयत्न किया। किन्तु तमिल नाटक तथा रंगमंच का विशेष विकास व्यावसायिक रंगमंचीय कम्पनियों द्वारा ही सम्पन्न हो सका। इस समय मद्रास शहर में ही अनेक व्यावसायिक कम्पनियां कायम हैं जो वर्ष भर अभिनय प्रस्तुत करती रहती हैं। राजमणिकम् कम्पनी भारत की सर्वाधिक तड़क-भड़क की कम्पनी है। इसी प्रकार सेवास्टेज और नेशनल थियेटर भी प्रसिद्ध कम्पनियाँ हैं। इनमें पौराणिक ऐतिहासिक कथानकों का अभिनय कुछ अधिक किया जाता है। चलचित्रों के प्रभाव से ये रंगमंच भी बहुत कुछ दब गये हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से इन्हें कुछ प्रोत्साहन मिलना प्रारम्भ हुआ है। तमिलनाड सरकार भी इन्हें कुछ आश्रय देती है। ये व्यावसायिक कम्पनियाँ मासिक वेतन देकर कलाकारों को नियुक्त करती हैं तथा दूसरे कार्यकर्ताओं को भी वैतनिक आधार पर रखती हैं। इसके साधन सीमित हैं ; अतः ऊँचे वेतन भी नहीं दिये जा सकते। फिर भी रंगमंच के क्षेत्र में ये कम्पनियाँ कुछ अच्छा काम कर रही हैं।

लोकनाट्य परम्परा तेलुगु (आन्ध) प्रदेश में बहुत प्राचीन है किन्तु नवीन शैली के थियेटर यहाँ भी इस शताब्दी के प्रथम या द्वितीय दशक में ही इस प्रदेश में भी प्रविष्ट हुए सबसे पहले संस्कृत और अँग्रेजी के अनुवाद रंगमंच पर आये। बाद में सामाजिक नाटकों का भी अभिनय प्रारम्भ हो गया।'कन्याशुल्कम्' (कन्यासुलक्कम्) एक प्रसिद्ध सामाजिक नाटक है जिसका अभिनय पर्याप्त प्रतिष्ठा पा सका। आजकल के रङ्गमंच व्यावसायिक और अव्यावसायिक दोनों दिशाओं में कार्य कर रहे हैं। व्यवसायिक कम्पनियाँ ऐतिहासिक पौराणिक नाटकों का अभिनय प्रस्तुत करती हैं जबकि अव्यावसायिक कम्पनियाँ विभिन्न राजनयिक विचार धाराओं के प्रचार का माध्यम बनी हुई हैं। आन्ध्र नाटक कलापरिषद तेलुगु लिटिल थियेटर तथा आन्ध्रथिमेटर फेड-

Scanned by CamScanner

रेशन कतिपय प्रतिष्ठित नाट्य कम्पनियाँ हैं जो तेलुगु रंगमंच के सुधार और उद्धार के लिये प्रयत्नशील हैं। आन्ध्रप्रदेश के प्रतिष्ठित नाट्यकार हैं—वारिसलिङ्गपमट्रेला, जी, अप्पाराव, टी राघवचारी, आत्र राजमन्नार इत्यादि। किन्तु आन्ध्रप्रदेश में भी रंगमंच की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। मेलों में या उत्सवों के अवसर पर रङ्गमंचों का आयोजन कर लिया जाता है जिसमें कतिपय अभिनेता बुला लिये जाते है और उनका अभिनय प्रस्तुत कर विराम ले लिया जाता है।

रंगमंच के विकास की दिशा में कन्नड (मैसूर) की भी स्थिति बहुत सन्तोष जनक नहीं कही जा सकती। एक सबसे बड़ी कमी यह यह है कि इस प्रदेश में व्याव-सायिक रंगमंच नहीं के बराबर हैं और अव्यावसायिक रंगमंच से किसी नाट्यकला की समृद्धि की वैसी कल्पना नहीं की जा सकती। व्यावसायिक नाट्यमण्डलियों में दत्ता-त्रेयनाटकमण्डली, थियेट्रिकल कम्पनी, विश्वगुणादर्श नाटक मण्डली इत्यादि का नाम विशेषरूप से उल्लेख्य है। इन कम्पनियों ने ऐतिहासिक पौराणिक वृत्तों को अभिनीत करने की दिशा में योगदान दिया है किन्तु मैसूर का जीवन नाटक में बहुत कम अभि-व्यक्त हो पाया है। कतिपय अव्यावसायिक कम्पनियां भी इस क्षेत्र में विद्यमान हैं जो यथासाध्य रंगमंच के विकास की दिशा में प्रयत्नशील हैं।

केरल कथाकली का प्रदेश है जिसमें मुखौटों तथा आहार्य अभिनय के अन्तर्गत आने वाले दूसरे प्रकारों के द्वारा भारतीयनाट्यपरम्पराप्राप्त रसानुभूति कराई जाती हैं। पहले-पहल संस्कृत या तमिल के अनुवाद ही केवल रंगमंच के अभिनय का विषय बना। केरल के आधुनिक रंगमंच का जन्म भी दक्षिणात्य अन्य प्रदेशों की भाँति इस शताब्दी के प्रथम या द्वितीय दशक में हुआ। यहाँ अब तक स्थायी रंगमंच निर्माण की दिशा में बहुत कम काम हो पाया है। दो एक नाटक मण्डलियाँ विद्यमान हैं जैसे केरल थियेटर, केरल पीपुल्स आर्टक्लब, कलानियम आदि। ये कम्पनियाँ जब तब लोक जीवन पर आधारित अभिनय प्रस्तुत करती रहती है। इसके अतिरिक्त कतिपय छोटी-छोटी भ्रमणशील कम्पनियाँ भी हैं जो घूम-फिरकर इधर-उधर गाँवों में अपनी कला प्रदर्शन करती रहती हैं। यहाँ स्थायी रंगमंज की दिशा में प्रयत्न-चल रहा है।

भरतनाट्यम् भी दक्षिण का एक विशिष्ट नाट्य है जो भरत की परम्परा में आता है। इस शैली को मन्दिरों की धार्मिक भावना ने विशिष्ट रूप से सुरक्षित रक्खा है। इसकी सुरक्षा में देवदासियों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। अब देवदासियों की प्रथा समाप्त हो चुकी है जिससे मन्दिरों में इस कला के अवसर जाते रहे हैं। अब भरत नाट्यम् धार्मिक निष्ठा से हटकर सामान्य कलाप्रेमियों के प्रचार का साधन रह गया है; उसकी भक्तिरूप आत्मनिष्ठा प्रायः विलीन हो चुकी है। अतः अब उसमें वह आकर्षण नहीं रहा जो मन्दिरों की छत्रछाया में पनपने के अवसर पर उनमें विद्यमान था।

Scanned by CamScanner

अव्यावसायिक रंगमंच

भारतीय रंगमंच की परम्परा प्रायः सर्वत्र पाई जाती है। इसे व्यावसायिक कम्पनियाँ भी अपनाये हैं और अव्यावसायिक शौकिया कम्पनियाँ भी इस कला को उन्नत करने का प्रयास जब तब करती रहती हैं। पंजाब, मध्यप्रदेश, बिहार उड़ीसा इत्यादि सब कहीं इस प्रकार की कम्पनियां स्थापित हैं और उनका यत्किंचित् योग-दान इस दिशा में होता रहता है। वास्तविकता यह है कि सिनेमा के अत्यधिक प्रचार के कारण व्यावसायिक कम्पनियों के विकास का अवसर बहुत कम रह गया है। अब यह कार्य शौकिया नाटक संस्थायें सम्पन्न करती हैं।

अव्यावसायिक नाट्य संस्थायें सामान्यतः सभी उच्चकोटि की शिक्षा संस्थाओं में स्थापित होती हैं और विशेषकर महाविद्यालयों में जहाँ उच्चकोटि की शिक्षा दी जाती है। अधिकांश कालेजों और माध्यमिक शिक्षा संस्थाओं में स्थायी रंगमंच और स्थायी रंगशालायें बनी होती हैं जहाँ उसी विद्यालय के छात्र वर्ष में एकाध बार शौकिया अभिनय करते हैं। इन रंगमंचों का प्रयोग दूसरे प्रकार के आयोजनों के लिए भी किया जाता है। जिन विद्यालयों में रंग-मंच नहीं भी होते वहाँ भी हाल बने होते हैं जिनमें तखतों को जोड़ कर अस्थायी रंगमंच बना लिया जाता है और उस विद्यालय के छात्र उन पर अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। किसी-किसी शहर, कस्बे और यहाँ तक कि कभी-कभी बड़े देहातों में भी इस प्रकार की नाटक कम्पनियाँ कायम हो जाती हैं। यद्यपि इनके सामने असु-विधायें बहुत होती हैं किन्तु जो काम शौक के लिए किया जाता है उसमें हृदयतत्त्व का समावेश होने से कुछ न कुछ मधुरता आ जाती है।

शौकिया नाटक का अभिनय करने में अभिनेता को दर्शकों की वाहवाही और प्रशंसा से बहुत सुख मिलता है। उनके लिए यह भी एक सहारा होता है कि वे नौसिखिये हैं। उनकी कमियों को छिपाने के लिए इमेच्योर होना एक आवरण का काम देता है। महाभाष्य का कथन 'अज्ञानं तस्य शरपम्' उनके विषय में पूर्ण रूप से लागू होता है। किन्तु यह भी सत्य है कि इन इमेच्योर नाटकसंघों में प्रशिक्षण और अभ्यास प्राप्त कर अनेक अभिनेता फिल्म जगत् में भी गये और वहाँ भी उन्हें अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। बम्बई और कलकत्ता फिल्म जगत् के दो प्रसिद्ध शहर हैं। यहाँ अव्यवसायी नाटक संस्थायें कायम हैं जो व्यवसायी संस्थाओं के आदर्श पर चलती है।

दिल्ली की संगीतनाटकअकादमी इसी प्रकार की एक संस्था है। इसके तत्त्वावधान में प्रतिवर्ष नाट्य समारोह होता है और दूर-दूर से नाटक मण्डलियाँ आकर अपनी कला का प्रदर्शन करती हैं। इसी प्रकार आकाशवाणी का संगीत नाटक विभाग भी विभिन्न प्रान्तों की नाट्य मण्डलियों को जुटाने का स्तुत्य कार्य करता है। एक भारतीय नाट्य संघ भी है जिसका सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय संस्था यूनेस्को से है। दिल्ली में नेशनल स्कूल आफ ड्रामा, जो पहले एशियन थियेटर इंस्टीस्यूट के नाम से

Scanned by CamScanner

प्रख्यात था, अभिनय कला प्रशिक्षण सुव्यवस्थित अच्छा केन्द्र है। इण्डियन नेशनल थियेटर भी अच्छा काम कर रहा है। इसमें नाट्य के अतिरिक्त संगीत, कविता इत्यादि की गोष्ठियाँ भी आयोजित की जाती हैं। इन अव्यवसायिक नाट्य संस्थाओं की दिशा में सर्वाधिक स्तुत्य योगदान कमलादेवी चटोपाध्याय का रहा है। दिल्ली की एक अन्य अव्यवसायी रंगमंचीय संस्था है—थ्रीआर्ट्स क्लब। यह पहले शिम्ला में स्थापित हुई थी; अब दिल्ली आ गई है। लिटिल थियेटर ग्रुप और दिल्ली आर्ट थियेटर भी जब तब अभिनय प्रस्तुत किया करते हैं जिनमें हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी पंजाबी आदि भाषाओं के नाटकों को भी रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाता है। कुदसिया बेगम ने हिन्दुस्तानी थियेटर की स्थापना की थी जिसके तत्त्वावधान में संस्कृत के कई नाटकों में हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किये जा चुके हैं। दिल्ली का थियेटर पैनोरमा हायर सेकेण्डरी स्कूल के कुछ अध्यापकों के प्रयत्न का फल है। इसके तत्त्वावधान में जब तब कोई न कोई नाटक खेला जाया करता है। यह संस्था सरकारी व्यय से सीमा के सैनिकों में भी कला प्रदर्शन करने जा चुकी है। इसे कुछ राजकीय संरक्षण भी प्राप्त है। डायरेक्टर ऑफ एजूकेशन के तत्त्वावधान में एक नाट्य विभाग भी है जो यथोचित रूप में स्कूली छात्रों और अध्यापकों में नाट्यकला विषयक अभिरुचि और प्रवृत्ति के लिए सचेष्ट रहता है।

अव्यवसायिक संस्थायें धीरे-धीरे प्रगति करके व्यावसायिक संस्था का रूप धारण कर लेती हैं। ऐसी अनेक व्यावसायिक संस्थायें हैं जो पहले अव्यवसायिक ही रही थीं। इन अव्यवसायिक संस्थाओं में कार्य करने वालों का नाटय व्यवसाय गौप होता है। ये सार्वकालिक कार्यकर्त्ता नही होते। अतः इनमें कुछ न कुछ अभ्यास की कमी रह ही जाती है। ये उतने मंजे हुए कलाकार नहीं हो पाते जितने व्यवसायिक कम्पनियों के कलाकार होते हैं। कलाकारों के कला का लाभ व्यावसायिक कम्पनियों में ही होता है। अतः अव्यवसायिक क्षेत्र में मंजकर ये कलाकार व्यवसायिक कम्पनियों में चले जाते हैं। बाल रंगमंच भी यत्र तत्र शहरों में स्थापित हैं जहाँ बच्चों को शिक्षा दी जाती है और बच्चों का मनोरंजन भी किया जाता है।

नाट्यकला के अन्य प्रकार

भारत में नृत्तनाट्य की परम्परा बहुत पुरानी है। इसमें नृत्य के द्वारा कोई कहानी प्रस्तुत की जाती है। किन्तु वृत्तनाट्य की नवीन परम्परा पाश्चात्य बैले नाट्य के प्रभाव का परिणाम है। इस बैले नृत्य की उत्पत्ति प्राचीन कोम में हुई थी। जिसमें नृत्य के द्वारा कोई कथा प्रस्तुत की जाती थी और नर्तक सर्वथा मूक रहता था; फिर भी उसकी भावभंगिमा और नृत्य-शैली से कथानक स्पष्ट होता चलता था। कुछ समय बाद इन बैले नृत्यनाट्यों में संगीत का भी समावेश हो गया। भारतीय नृत्य नाट्य से इसमें सबसे बड़ा भेद यह है कि भारतीय नृत्य नाट्य में पौराणिकता धार्मिकता और आध्यात्मिकता का प्राधान्य होता है जबकि पाश्चात्य बेले में लौकिक कथानक और अधिकतर प्रेमकथा प्रस्तुत की जाती है। भारत में बेले नाटय का प्रवर्तक उदयशंकर

Scanned by CamScanner

था जिसने मुखौटी भारतीय नाट्य की शास्त्रीय पद्धति और संगीत का संक्षीप्तीकरण करके एक नई पद्धति को जन्म दिया जिस पर पाश्चात्य नृत्त नाट्य की गहरी छाया विद्यमान थी। इन नृत्तनाट्यों के माध्यम से भारतीय जन जीवन ही नहीं राजनैतिक जागरण, सामाजिक चेतना, एतिहासिक घटनाओं इत्यादि को भी नृत्य नाट्य द्वारा प्रस्तुत किया। इस नृत्य नाट्य के तत्त्वावधान में कई एक नर्तकियां विदेशों तक में ख्याति प्राप्त करने में सफल हो सकीं। बम्बई की प्रसिद्ध नृत्यनाट्य मण्डली लिटिन बेलेट्रुप है जो मुखौटों के प्रयोग से हैं। पशु-पक्षियों मनुष्यों ऋषियों इत्यादि का अभिनय बड़ी ही सफलता से प्रस्तुत कर देता है। जटायु रावण का सामना करता है और रावण द्वारा मारा जाता है। राम हिरण का पीछा करते हैं। सारे कार्य कठपुतलियों नाच जैसे मालूग पड़ते हैं यद्यपि ये मनुष्यों के अभिनय होते हैं।

नृत्य नाट्य के समान संगीत नाट्य (अपिरा) भी एक विधा है। इसमें सुख-दुःख, मिलन-विरह, प्रसन्नता-अप्रसन्नता सभी प्रकार के भाव संगीत के माध्यम से ही व्यक्त किये जाते हैं। इस विधा पर भी पाश्चात्य शैली का बहुत प्रभाव पड़ा है। इसमें हीर-रांझा जैसे सामाजिक कथानक भी आते हैं और सामयिक राजनैतिक परिस्थितियों से प्रभावित संगीत प्रस्तुत किये जाते हैं। इसी से मिलता-जलता एक गीति नाट्य का भी प्रकार है।

उपसंहार

आज का हमारा रंगमंच अनेक दिशाओं में फैल फुटक कर बढ़ रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश की नाट्यकला की ओर सरकार और कलाप्रवीण समाज दोनों का ध्यान गया है और इस कला को पर्याप्त प्रोत्साहन भी दिया जाता है। निस्सन्देह यह एक ऐसा साधन है जिससे सांस्कृतिक आदान प्रदान में तो सहायता मिलती ही है राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की दिशा में भी इसका बहुत अधिक उपयोग किया जा सकता है। इसी प्रकार समाजसुधार और सामूहिक सुरक्षा चेतना के प्रचार का भी नाट्यकला एक अभूतपूर्व साधन है। आमोद-प्रमोद का यह साधन सकुचित प्रान्तीय भावना और साम्प्रदायिकता का भी निराकरण करने में पूर्णरूप से समर्थ है। भारत के जो प्रहरी सीमा पर तैनात है उनके मनोरंजन का साधन जुटाने के लिए भी सरकार नाट्य मण्डलियों का उपयोग करती है और समय-समय पर इस प्रकार की मण्डलियाँ उन प्रदेशों में जाती रहती हैं। इसके अतिरिक्त प्राचीन नाट्यकला का पुनरुद्धार भी इन नाट्यमण्डलियों के माध्यम से हो रहा है। विदेशों में भी भारतीय कला का पर्याप्त सम्मान हुआ और अनेक कलाकार अपनी कम्पनियाँ लेकर विदेशों में गये तथा पर्याप्त सम्मान प्राप्त किया।

आधुनिक भारतीय नाट्यकला धीरे-धीरे अपनी पुरानी विरासत को भूल चुकी है। प्राचीन तथा मध्यकालीन नाट्यकला से आधुनिक रंगमंच एकदम दूर पड़ गया है। पाश्चात्य नाट्यकला का प्रभाव रंगमंच, नाट्यमण्डप, अभिनय पद्धति इत्यादि समस्त तत्त्वों पर दृष्टिगत हो रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि पाश्चात्य प्रभाव ने

Scanned by CamScanner

भारतीय रंगमंच को समृद्ध भी किया है और उसे गौरवपूर्ण पद भी प्रदान किया है। किन्तु भारतीय नाट्यपद्धति अपने में पूर्ण तथा प्रशस्त है और आज भी उसमें इतनी शक्ति है कि वह हमारे रंगमंच को बहुत कुछ प्रदान कर सके। केवल प्रवृत्ति की आवश्कयता है। यदि रंगमंच के भाग्य विधाता प्राचीन भारतीय विरासत का अनुशीलन कर ठीक रूप में नवीन पद्धति के साथ उसका समन्वित रूप प्रस्तुत करें तो आज के युग में यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि होगी।

हमारी नाट्यकला आज शहरों तक ही सीमित होती जा रही है। दिल्ली और मद्रास जैसे महानगर उसके केन्द्र बन गये हैं। किन्तु भारत नगरों में नहीं गांवों में बसता है। अतः रंगमंच की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये जो ग्रामीण जनता की भी सेवा कर सके। तभी नाट्यकला का वास्तविक अभिप्राय सिद्ध हो सकता है। आज गामीण जनता अपने मनोरंजन के लिए परम्परागत लोकनाट्य पर ही निर्भर है। सिनेमा उनके लिए सुलभ नही। अतः यदि इस कला के कर्णधार इस दिशा में अग्रसर होंगे तो निस्संदेह वे एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति में ही सहायक होंगे और अपने कर्त्तव्य का अधिक पूर्णता से पालन कर सकेंगे।

—: ० :—

UNIVERSITY SDC

Scanned by CamScanner